चन्दा
मई १९७०
75 P

चन्दामामा

मई १९७०

*

विजय - सूची

*

एक प्रति ०-७५ पैसे

वार्षिक चन्दा रु. ९-००
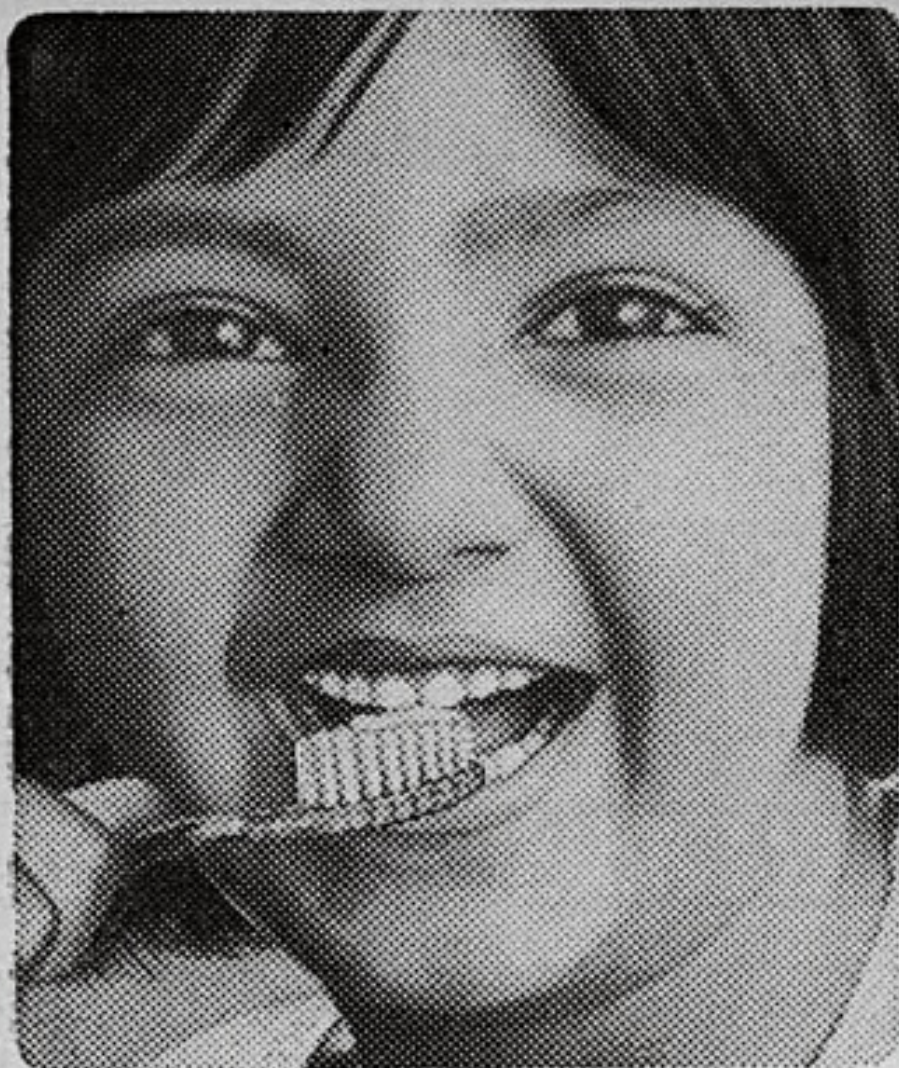
कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिन भर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल ख़त्म कर देता है और कोलगेट विधि से खाना खाने के तुरंत बाद दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का — अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक रोगाणुओं को दूर कर देता है। केवल कोलगेट के पास यह प्रमाण है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है— इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

COLGATE DENTAL CREAM

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए... दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही ख़रीदते हैं!

DC. G. 41 HN

A
KASHYAP
PRODUCT
GLOBE
Mathematical Instruments

लाइफ़बॉय
है जहाँ
तंदुरुस्ती
है वहाँ
LIFEBUOY
for health
लाइफ़बॉय
मैल में छिपे कीटाणुओं
को धो डालता है
लिंटास- L. 61-77 HI
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

पालन पोषण सही कीजिए ;
बच्चों को बोर्नविटा दीजिए !

चन्दामामा के ग्राहकों को सूचना

यदि आप अपना पता बदल रहे हों, तो पाँचवीं तारीख से पहिले ही अपनी ग्राहक-संख्या के साथ, अपना नया पता सूचित कीजिये। यदि विलम्ब किया गया, तो अगले मास तक हम नये पते पर 'चन्दामामा' न भेज सकेंगे। आपके सहयोग की आशा है।

डाल्टन एजन्सीस, मद्रास-२६

चन्दामामा
संचालक: चक्रपाणी
इस वर्ष महात्मा गांधीजी की शतजयंती के साथ लेनिन की शतजयंती भी सारे संसार में मनायी जा रही है। इस मास के साथ लेनिन के पैदा हुए सौ वर्ष पूरे हो जाते हैं। 'अक्तूबर की क्रांति' के द्वारा रूस में सर्व प्रथम समाजवाद की स्थापना करके लेनिन ने विश्व के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू किया है। चन्दामामा के पाठकों के लिए हम इस अंक से लेनिन के बचपन से संबंधित घटनाओं का परिचय करा रहे हैं।
वर्ष : २१ मई १९७० अंक : ९
CHITRA

ज्ञानोदय

एक गाँव में अंबिका प्रसाद नामक एक किसान था। उसके पड़ोस में रमाबाई नामक एक गरीबिन झोंपड़ी बनाकर रहा करती थी। वह औरत अपने आंगन में फूलों के पौधे पालती और फूल बेचकर अपना गुजारा करती थी। रमाबाई के पाँच साल का एक पोता भी था।

अंबिका प्रसाद के मन में एक दिन यह विचार पैदा हुआ कि रमाबाई की ज़मीन को भी अपने आंगन में मिला दे तो क्या ही अच्छा होगा। उसने रमाबाई को बुलाकर पूछा–"रमाबाई जी, सुनो! मैं अपने घर के आंगन को और फैलाना चाहता हूँ। तुम अपनी जगह मुझे दे दो। बदले में थोड़ा-बहुत मूल्य मैं तुमको चुकाऊँगा।"

"मेरे और मेरे पोते का यही बसेरा है। इसे छोड़कर हम कहाँ जा सकते हैं? हमारा सब कुछ यही झोंपड़ी है। मेरे पति, पुत्र और बहू सब इसी झोंपड़ी में मर गये। मैं भी यहीं पर मर जाऊँगी तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।" बूढ़ी ने अंबिका प्रसाद से कहा।

अंबिका प्रसाद ने कई तरह से बूढ़ी को समझाया, लेकिन कोई फ़ायदा न रहा। तब उसे डराते-धमकाते हुए कहा–"तुमको कल शाम तक यह झोंपड़ी खाली करनी होगी, वरना बड़ा बुरा होगा।"

"मैं अपनी झोंपड़ी को खाली क्यों करूँगी? मैं यहाँ से नहीं हटूँगी!" रमाबाई ने साफ़ इनकार कर दिया।

अंबिका प्रसाद ने बूढ़ी को ज़बर्दस्ती झोंपड़ी से निकालने का निश्चय किया। उसने अपने नौकरों को बुलाकर झोंपड़ी से सामान बाहर फेंकवा दिये और झोंपड़ी को गिरवा दिया।

जनार्दन राय

रमाबाई ने रोते हुए जाकर सरपंच से शिकायत की। पंचों ने अंबिका प्रसाद को बुलाकर कैफ़ियत तलब की।

अंबिका प्रसाद ने पंचों से निवेदन किया—"इस बूढ़ी के पुत्र ने मुझसे सौ रुपया क़र्ज़ लिया था। उसने मुझे ऋण-पत्र लिखकर दिया था। लेकिन आज तक इस बूढ़ी ने ब्याज़ तक मुझे नहीं चुकाया। मैंने अपने क़र्ज के बदले इस बूढ़ी की झोंपड़ी पर कब्ज़ा कर लिया है।" यह कहते उसने एक ऋण-पत्र पंचों के सामने रख दिया। उस पर किसीके अंगूठे की छाप भी थी।

पंचों ने उस पत्र पर विश्वास करके अंबिका प्रसाद के पक्ष में फ़ैसला सुनाया। बूढ़ी के प्रति न्याय नहीं हुआ।

इसके बाद बूढ़ी रमाबाई ने एक दूसरी जगह झोंपड़ी बनायी। पहले की तरह वह फूल बेचकर अपने दिन काटने लगी।

कुछ दिन बीत गये। अंबिका प्रसाद बूढ़ी की झोंपड़ी की जगह मकान बनाने के ख्याल से नींव डालने लगा। खुदाई का काम चल रहा था। एक दिन रमाबाई अपने पोते को साथ लेकर खुदाई की जगह आ पहुँची। बूढ़ी को अपने यहाँ आये देख आंबिका प्रसाद चकित रह गया।
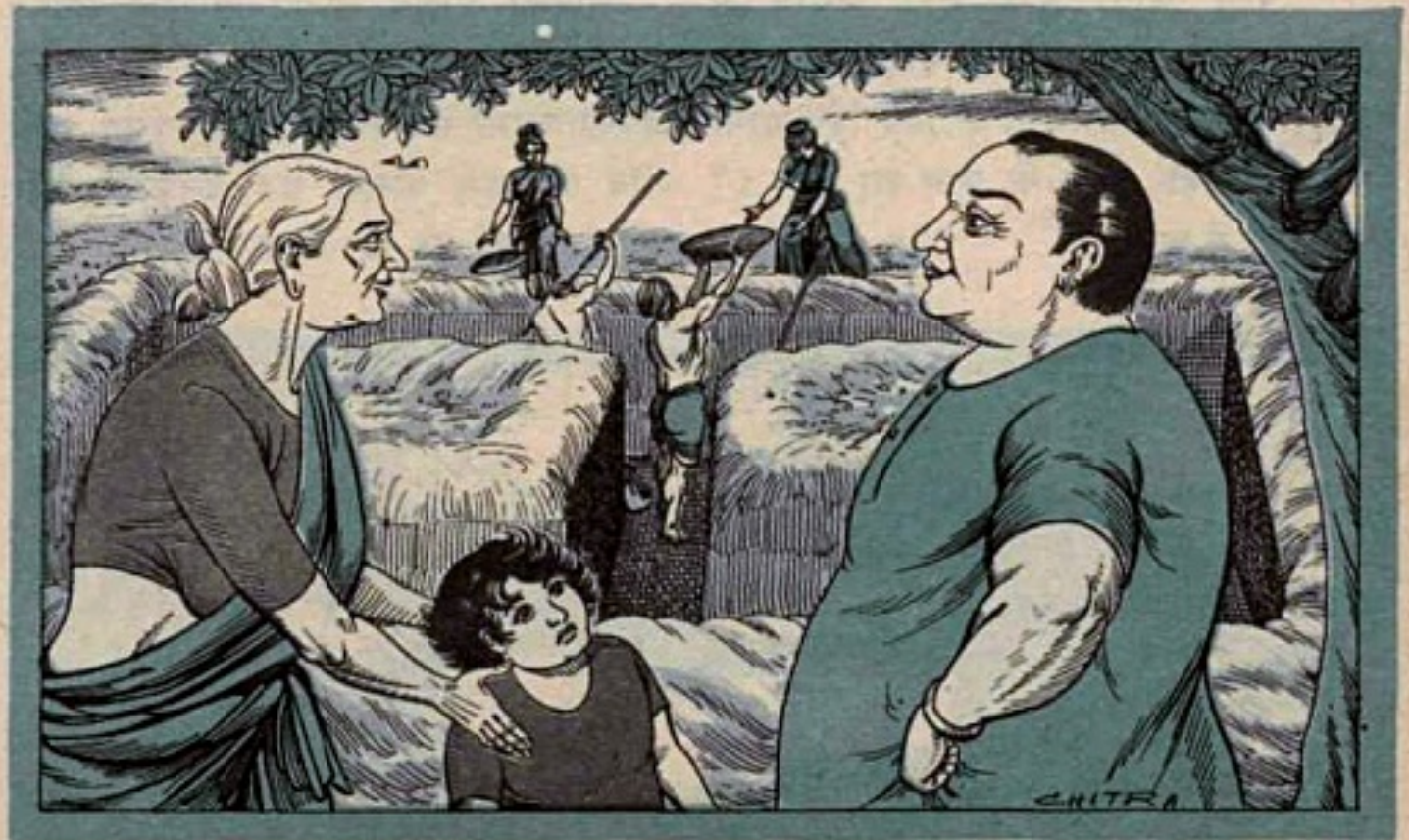
अंबिका प्रसाद ने बूढ़ी को देखते ही पूछा–"क्यों, रमाबाई जी, कैसी हो? यहाँ पर क्यों आयी?"

"आप बड़े अमीर हैं। मैं गरीबिन हूँ, अनाथा हूँ। मुझे आपकी मेहर्बानी चाहिये। आप से एक मदद पाने आयी हूँ।" रमाबाई ने कहा।

"कैसी मदद? पूछो तो सही?" अंबिका प्रसाद ने कहा।

"मेरा पोता रोज पुरानी झोंपड़ी की जगह दिखाने का हठ करता है। इसलिए आयी हूँ।" रमाबाई ने जवाब दिया।

"तुमने यह जगह दिखा दी है न? और क्या?" अंबिका प्रसाद ने पूछा।

"चली जाती हूँ। मेरी ज़मीन से टोकरी भर मिट्टी दिला दीजिये। उस मिट्टी से चूल्हा बनालूँगी। उस पर खाना पकाकर बड़ी तृप्ति के साथ खा लूँगी।" रमाबाई ने कहा।

रमाबाई का विचार सुनकर अंबिका प्रसाद हँस पड़ा और बोला–"अच्छी बात है। टोकरीं भर मिट्टी ले जाओ।" रमाबाई ने टोकरी में मिट्टी भर ली और पूछा–"सरकार, आपका पुन्न होगा। ज़रा यह टोकरी उठाने में हाथ बंटा लो।"

अंबिका प्रसाद ने टोकरी में हाथ लगाया, पर वह उठी नहीं। उसने कई बार कोशिश की। उसका शरीर पसीना-पसीना हो गया, मगर टोकरी उठी नहीं।

रमाबाई जोर से हँस पड़ी और बोली–"टोकरी भर मिट्टी न उठा सकनेवाले तुम यह सारी मिट्टी कैसे ढोना चाहते हो?"

अंबिका प्रसाद लज्जा से भर उठा। अपमान के साथ उसमें ज्ञानोदय भी हुआ। अपनी करनी पर पछताते हुए उसने उसी नींव पर एक अच्छा घर बनवाया और उसे रमाबाई को भेंट किया।
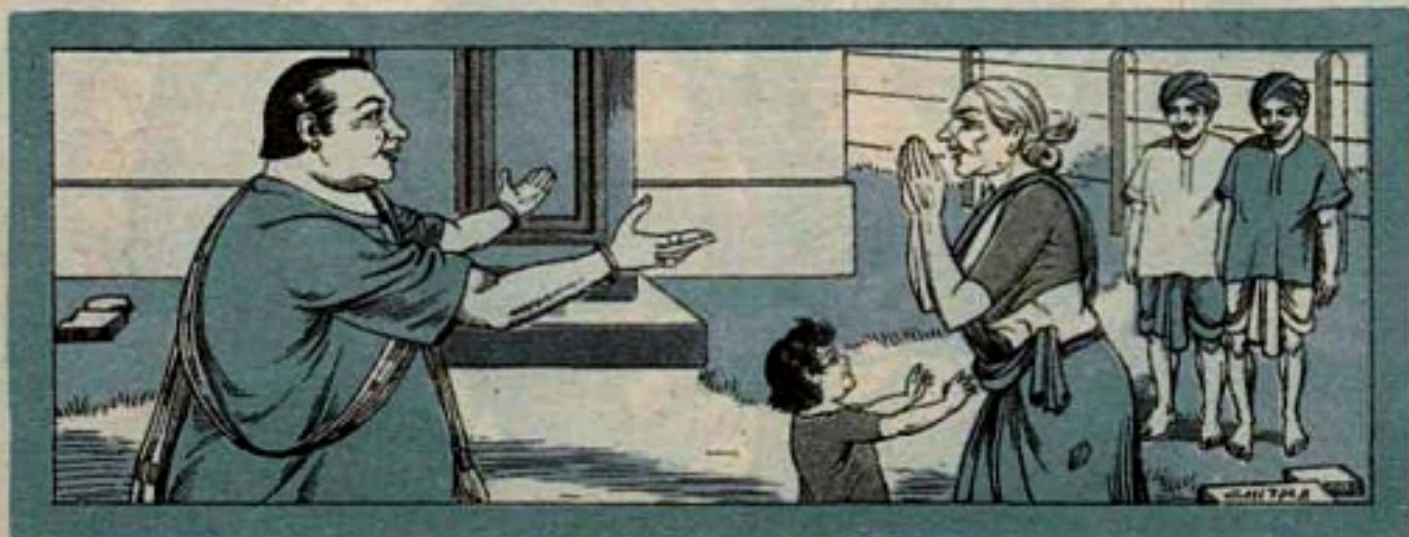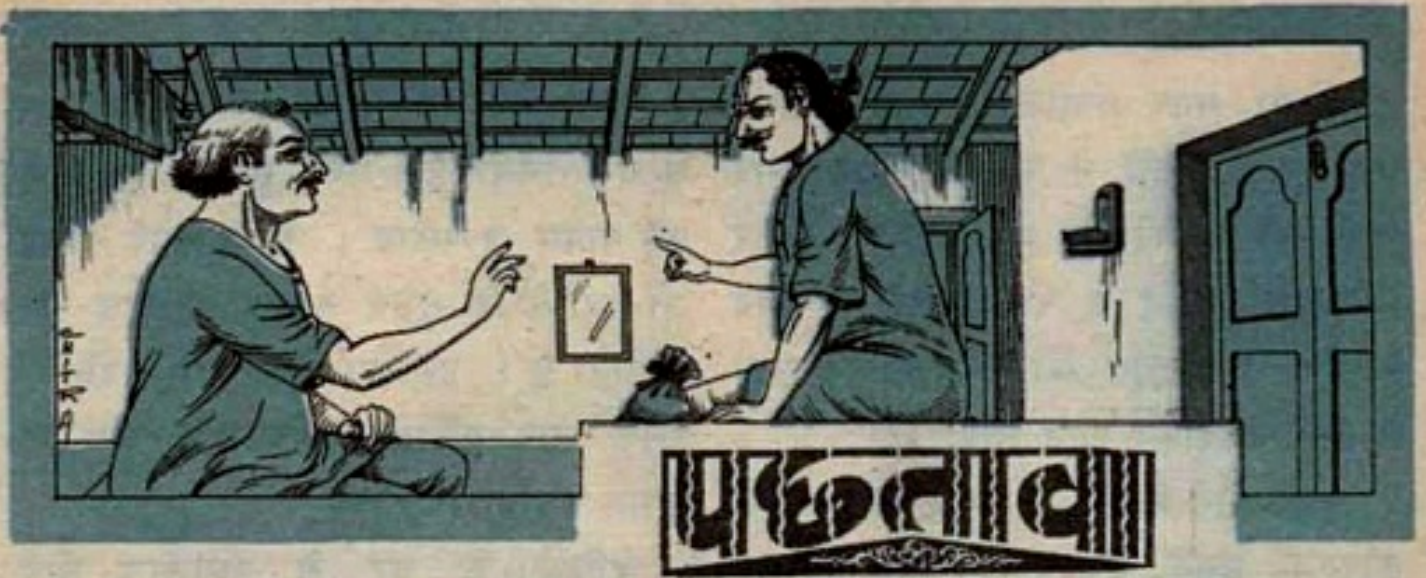
पुराने ज़माने की बात है। एक गाँव में दो दोस्त थे। उनमें पन्नालाल रहम-दिल का था और मोतीलाल कंजूस था। पन्नालाल के कोई संतान न थी, इसलिए उसने तीर्थाटन करने का संकल्प किया। उसके पास चार सौ अशर्फ़ियों की नक़द थी। उनमें से एक सौ अशर्फ़ियाँ राह-खर्च के लिए अपने पास रख लीं और बाक़ी अशर्फ़ियों को कहीं होशियारी से छिपाना चाहा। उसकी समझ में न आया कि उन अशर्फ़ियों को कहाँ पर छिपाये। इसलिए उसने मोतीलाल की सलाह माँगी।

"तुम्हारी अशर्फ़ियों को मैं अपने पास तो रख सकता हूँ, लेकिन मेरा डर है कि कहीं खर्च न हो जाय। इसलिए अच्छा यह होगा कि तुम अपने धन को गाँव के बाहर बरगद के नीचे गाड़ दो और लौटने पर ले लो।" मोतीलाल ने सलाह दी।

पन्नालाल को यह सलाह बड़ी अच्छी लगी। मगर दिन के वक़्त उस धन को बरगद के नीचे गाड़ दिया जाय तो कोई देख लेगा और हड़प कर जायगा। इसलिए पन्नालाल ने सोचा कि रात को सबके सो जाने के बाद धन गाड़ दिया जाय। लेकिन उसे रात के अंधेरे में अकेले गाँव के बाहर जाने में डर लगा। इसलिए मोतीलाल को साथ लेकर बरगद के पास गया। तीन सौ अशर्फ़ियाँ मिट्टी में गाड़ दीं। दूसरे दिन बड़े सवेरे ही उठकर काशी की यात्रा पर चल पड़ा।

पिछली रात को देरी से घर लौटे देख मोतीलाल की पत्नी ने कारण पूछा। मोतीलाल ने पन्नालाल की अशर्फ़ियों के गाड़ने की बात बतायी। यह खबर सुनते ही मोतीलाल की पत्नी का दिल ललचा उठा। उसने उन अशर्फ़ियों को लाने का

गोमती वर्मा

हठ किया, मगर मोतीलाल पहले न माना, जब उसकी पत्नी ने कुएँ में कूदकर मर जाने की धमकी दी तब लाचार होकर मोतीलाल बरगद के पास छिपा धन खोद लाया। मोतीलाल की पत्नी ने उस सोने से गहने बनवाकर पहन लिया।

कुछ महीने बीतने पर पन्नालाल यात्रा से लौटा। उसने बरगद के पास जाकर खोदकर देखा, लेकिन अशर्फ़ियाँ न थीं। पन्नालाल ने सीधे गाँव के मुखिये के पास जाकर शिकायत की।

मुखिये ने पन्नालाल की सारी बातें सुनीं और कहा–"पन्नालाल, यह सही है कि तुम्हारे धन गाड़ते समय मोतीलाल ने देख लिया है। मगर तुम्हारे पूछने से वह वापस न करेगा। इसके कोई गवाह भी नहीं है कि तुमने बरगद के पास धन छिपाया है। इसलिए एक काम करो।" इसके बाद मुखिये ने पन्नालाल को एक उपाय बताया।

मुखिये के घर से पन्नालाल सीधे मोतीलाल के घर गया। पन्नालाल को देखते ही मोतीलाल का दिल बैठ गया। मगर पन्नालाल के चेहरे को देखने पर उसे लगा कि उसके धन के खोने की खबर उसे मालूम तक नहीं। शायद वह अभी

तक बरगद के पास गया न होगा। यह सोचकर मोतीलाल ने हिम्मत बटोर ली और कुशल प्रश्न पूछे–"पन्नालाल जी, कुशल हो न? यात्रा कैसी रही?"

"हाँ, भाई! तुम्हारी कृपा से यात्रा बड़े मजे में बीत गयी। सुनो, हमें एक बार और बरगद के पास जाना होगा। क्योंकि इस यात्रा में भाग्य से मुझे एक हज़ार अशर्फ़ियाँ हाथ लगी हैं। इन अशर्फ़ियों को उन पुरानी अशर्फ़ियों के साथ गाड़कर इस बार मैं रामेश्वरम की यात्रा करना चाहता हूँ। कल रात को मैं आपके घर आऊँगा। हम दोनों उस बरगद के पास जायेंगे; समझें।" पन्नालाल ने कहा।

पन्नालाल की यह बात सुनकर मोतीलाल डर गया कि दोनों को फिर बरगद के पास जाना है। मोतीलाल ने कल पन्नालाल के साथ जाने की स्वीकृति देकर उसे भेज दिया। तब अपनी पत्नी से पूछा–"कल रात को मैं पन्नालाल के साथ बरगद के पास कौन-सा चेहरा लेकर जाऊँ? चोरी का पता लग जायगा। तुमने मेरी बात नहीं सुनी।"

"आप इतनी छोटी-सी बात पर डरते क्यों हैं? मेरे गहने गिरवी रख कर तीन

सौ अशर्फ़ियाँ ले आइये। उस धन को देख पन्नालाल हिम्मत के साथ एक हज़ार अशर्फ़ियाँ वहीं पर गाड़ देगा। उसके रामेश्वर जाते ही हम सारी अशर्फ़ियाँ निकाल लेंगे।" मोतीलाल की पत्नी ने समझाया।

मोतीलाल अपनी पत्नी की अक्लमंदी पर मन ही मन खुश हुआ। उसके गहने गिरवी रख कर तीन सौ अशर्फ़ियाँ ले आया। रात को उसी बरगद के नीचे गाड़ कर घर लौटा।

दूसरे दिन रात को मोतीलाल ने पन्नालाल की प्रतीक्षा की। लेकिन पन्नालाल न आया। आधी रात बीत चुकी थी। मोतीलाल ने पन्नालाल के घर जाकर दर्वाजा खटखटाया। पन्नालाल जाग पड़ा और पूछा-"क्या बात है, मोतीलाल? इतनी रात गये आये हो?"

"तुमने आज रात को बरगद के पास जाने की बात कही थी न?" मोतीलाल ने कहा।

"ओह, यह बात है? मैंने सोचा कि सवेरे तुमको असली बात बता दूँगा। मैं फिलहाल रामेश्वरम की यात्रा पर नहीं जा रहा हूँ। इसलिए शाम को टहलने के लिए बरगद की ओर गया और गड़ा हुआ धन ले आया।" पन्नालाल ने कहा।

मोतीलाल का सर चकरा गया। वह बड़ी निराशा के साथ घर लौटा और सारी बातें अपनी पत्नी को बतायीं।

"भगवान, कैसा छल है? हमने नाहक़ पाँच सौ अशर्फ़ियों की क़ीमत के गहने तीन सौ अशर्फ़ियों पर गिरवी रख दिये। उन्हें कैसे छुड़ायें?" मोतीलाल की पत्नी ये शब्द कहते सर पीटने लगी। उसके साथ मोतीलाल ने भी आँसू बहाये। लेकिन कुछ करते न बना। अपनी करनी पर दोनों पछताते रह गये।

शिथिलालय

[२८]

[शिखिमुखी के दल ने रात को एक छोटे टापू में डेरा डाला। शिथिलालय के पुजारी का एक सेवक उनकी नावों को डुबोने आया और वह नांगसोम के हाथों में मारा गया। इसके बाद चार दिन की यात्रा करके वे लोग वृच्छिक टापू में पहुँचे। वहाँ पर शिखिमुखी और विक्रमकेसरी ने एक उजड़ा मंदिर देखा। बाद....]

टीले पर से शिखिमुखी तथा विक्रमकेसरी ने जो उजड़ा मंदिर देखा था, उस ओर वे दोनों निकल पड़े। वृच्छिक टापू तक वे लोग बड़ी मेहनत व तक़लीफ़ें उठाकर पहुँच गये थे। उन्होंने सपने में भी न सोचा था कि बड़ी आसानी से ही उन्हें शिथिलालय का पता लग जायगा।

सूरज डूबने को था। चारों ओर अंधेरा फैलने लगा था। तब वे दोनों मंदिर तक पहुँचे। मगर मंदिर में क़दम रखते ही उन्हें बड़ी निराशा हुई। यह बात सच थी कि मंदिर उजड़ने की हालत में था। लेकिन जैसे महाराजा विक्रमकेसरी ने सोचा था कि उसमें महान शिल्प और स्तम्भों पर सोने का मुलम्मा चढ़ाया गया होगा, वैसा न था। सारा मंदिर पत्थर से बनाया गया था। गर्भ गृह में कालीमाता की मूर्ति एक ओर झुकी

सोने की चमक से आँखों को चौंधियानेवाला है।" शिखिमुखी ने कहा।

विक्रमकेसरी शिखिमुखी की बातों के जवाब में स्वीकार सूचक सर हिलाकर मूर्ति के पास पहुँचा। उसी समय एक वृच्छिक मूर्ति के पीछे से होकर दीवार की ओर रेंगता गया। वह साधारण बिच्छुओं से दस-बारह गुने ज्यादा बड़ा था। विक्रम ने उसे मारने के ख्याल से तलवार उठायी थी कि इतने में दो और बिच्छु मूर्ति के पीछे से बाहर आये।

दिखाई पड़ी। दीवार में निर्मित आलों में कुछ पत्थर की मूर्तियाँ बिखरी पड़ी थीं। उन्हें लगा कि वह मंदिर भूकंप के कारण उजड़ गया होगा। उन्हें लगा कि उन लोगों ने शिथिलालय के संबंध में जैसी कल्पना की थी, उसके अनुरूप यह मंदिर नहीं है।

"विक्रम, हम जिस शिथिलालय की खोज में आये हैं, वह यह नहीं है। तुम्हारे दादा ने जिस मंदिर के बारे में सुना और इभ्यु जाति के लोगों ने जैसा वर्णन किया, उस मंदिर में अद्भुत शिल्प होने चाहिये। साथ ही हमने सुना है कि वह मंदिर

शिखिमुखी ने विक्रम को रोकते हुए कहा—"विक्रम, उन बिच्छुओं को मारने की नाहक़ कोशिश मत करो। यह वृच्छिक टापू है। इन राक्षसी बिच्छुओं को मारने का प्रयत्न करेंगे तो हमें दूसरे काम देखने का मौक़ा तक न मिलेगा। आखिर हम कितने बिच्छुओं को मारते बैठे रहेंगे? हमें अपना कर्तव्य भूलना नहीं चाहिये। इसलिए यहाँ से चले चलो।"

"तुम सच कहते हो। मेरे ख्याल से इन बिच्छुओं से बचकर रहना ही उत्तम है। यह सही है कि हमने जो सोचा था, वह शिथिलालय यह नहीं है। अब हमें क्या करना होगा?" विक्रमकेसरी ने कहा।

शिखिमुखी सर झुकाये सोचते हुए मंदिर से बाहर आया। चारों तरफ़ फैले पहाड़ों की ओर नजर दौड़ाकर कहा—"हमें असली शिथिलालय का पता लगाने के लिए इन पहाड़ों और टीलों को छानना पड़ेगा। लेकिन इस प्रयत्न में हमें बहुत ही जागरूक रहना है, वरना दुष्ट पुजारी के चंगुल में फँस जायेंगे।"

"शिखी, मेरा संदेह है कि पुजारी हमसे पहले ही इस टापू में पहुँच गया है। वह अब तक शिथिलालय में पहुँचकर उन अमूल्य वस्तुओं को हड़प कर भाग तो नहीं गया होगा?" विक्रमकेसरी ने संदेह प्रकट किया।

इस पर शिखिमुखी ने मुस्कुराकर जवाब दिया—"संदेह करके हमें परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। कल सवेरे सूर्योदय के साथ हम शिथिलालय की खोज में इस टापू को छान डालेंगे। अगर कहीं पुजारी से हमारी भेंट हो गयी तो हम उसका खात्मा कर डालेंगे। मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि पुजारी अब तक शिथिलालय तक पहुँच गया होगा।"

इसके बाद वे दोनों चुपचाप नावों के पास लौट आये। वहाँ के लोगों को सारी बातें समझायीं। इस पर नांगसोम ने उन्हें बताया कि ऐसे शिथिलालय तो इस टापू में कई हो सकते हैं। उसने यह भी बताया कि एक ज़माने में इम्यु जाति के लोग इस टापू में सैकड़ों व हज़ारों की संख्या में थे। आज का हाल क्या है, वह निश्चित रूप से कुछ बता नहीं सकता।

खाने के बाद सब ने सोने की तैयारी की। चांदनी की रोशनी में चारों तरफ़ के पहाड़ और पेड़ चमक रहे थे। जांगला को नावों का पहरा देने के लिए नियुक्त कर सब लेट गये।

शिखिमुखी गहरी नींद में था। अचानक आहट पाकर वह जाग पड़ा। जांगला लंगड़ाते हुए उसके निकट आ रहा था। शिखिमुखी को लगा कि वह धोखा देने के लिए आ रहा है। तुरंत अपने हाथ में तलवार लेकर शिखिमुखी उठ खड़ा हुआ।

जांगला पल-भर के लिए चकित रह गया। फिर संभलकर बोला—"शिखी साहब, तुम सोचते हो कि मैं तुमको मार डालने के लिए आया हूँ। लगता है कि तुम मुझ पर अब भी शक करते हो। मैं तुमको खतरे से बचाने के लिए सचेत करने आया हूँ।"

शिखिमुखी अपनी जल्दबाज़ी पर मन ही मन पछताते हुए बोला—"खतरे से बचाने आये हो? क्या दुश्मन आ गया है या पुजारी?"

"मालूम नहीं होता कि कौन आया है? ज़मीन पर लेटकर सावधानी से सुनो। डफलियों की अस्पष्ट आवाज सुनायी दे रही है।...सुनो, अब और स्पष्ट सुनायी देती है!" ये शब्द कहते जांगला ने पास में स्थित पेड़ों की ओर दृष्टि दौड़ायी।

शिखिमुखी को भी वह आवाज़ साफ़ सुनायी देने लगी। इस पर उसने ज़ोर से चिल्लाकर कहा—"दुश्मन आया है, जाग उठो! दुश्मन...।"

विक्रमकेसरी के साथ नांगसोम वग़ैरह तुरंत जाग उठे। यह सोचकर सब ने झट अपने हाथों में हथियार लिये कि कोई खतरा पैदा हो गया है। लेकिन इस बीच चारों ओर से पच्चीस-तीस लोगों ने उन्हें घेर लिया। उनमें एक के सर पर बिच्छु के आकार की टोपी ढकी थी जिसमें आँखों के पास दो छेद थे। उन छेदों से होकर उसकी आँखें चमक रही थीं।

टोपीधारी ने अपने हाथ की पत्थर की कुल्हाड़ी उठा कर अपने अनुचरों से

कहा–"सपने में वृच्छिक माता ने दर्शन देकर मुझे इन्हीं लोगों के बारे में बताया था। इनमें से योग्य व्यक्ति की बलि देने से हम बिना किसी प्रकार के खतरे के वृच्छिक माता के मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं।"

शिखीमुखी ने भांप लिया कि ये विकृत आकार वाले लोग वृच्छिक टापू के आदिमवासी हैं और इस हालत में उनका सामना करना खतरे से खाली नहीं है। जब उसने विक्रमकेसरी से यह बात बतायी, तब उसने भी मान लिया।

इस बीच नांगसोम ने शिखीमुखी के पास पहुँच कर कहा–"ये लोग जो भाषा बोलते हैं, वह तो हमारी इम्यु जाति की भाषा से मिलती-जुलती है।"

"तो तुम्हारा ख्याल है कि उस बोली की मदद से हमारा उपकार होगा। तुम उन लोगों को समझाओ कि हम लोग उन्हें धोखा देने के ख्याल से इस टापू में नहीं आये हैं, बल्कि तूफ़ान के थपेड़े खाकर हमारी नावें इस टापू के किनारे लग गयी हैं।" शिखीमुखी ने कहा।

नांगसोम उन जंगली लोगों के नेता के पास जाकर शिखीमुखी के कहे अनुसार उसे समझाया और तब कहा–"हम सब एक ही इम्यु जाति के लोग हैं। हम में दुश्मनी किस लिए? सवेरा होते ही हम अपने रास्ते चले जायेंगे।"

नांगसोम की बातों पर चकित होकर जंगली नेता ने कहा–"हम इम्यु जाति के हैं, यह बात पुरानी है। इस वक़्त हम वृच्छिक जाति के हैं। दो दिन पहले शिथिलालय का पुजारी नामक एक आदमी इस टापू में उतरा। वह कहता था कि वह भी इम्यु जाति का है और शिथिलेश्वरी के मंदिर की खोज में आया हुआ है। मेरा संदेह है कि वह जिस शिथिलेश्वरी मंदिर की

अपने साथ लाने का आदेश दे वह आगे बढ़ा।

शिखिमुखी का दल लाचार होकर उनके साथ चल पड़ा। शिखिमुखी को इस बात का पता चला कि शिथिलालय का पुजारी इस टापू में पहुँच गया है और शिथिलालय का पता लगाने के लिए कोई चाल चल रहा है। वृच्छिक जाति के नेता के कहे अनुसार वह मंदिर इस टापू में कहीं भूगर्भ में है। लेकिन उन्मत्त कैथा क्या चीज़ है।

यही संदेह नांगमोम के मन में भी पैदा हुआ। उसने अपने साथ चलनेवाले एक जंगली से पूछा–"उन्मत्त कैथा क्या चीज़ है? क्या वह ऐसा महान है? वह कहाँ पर मिलता है?"

जंगली ने हाथ उठा कर पास के दो पहाड़ों की चोटियों की ओर संकेत करते हुए कहा–"कैथे के पेड़ उन चोटियों के निचले भाग में एक तालाब के किनारे पर हैं। वहाँ चार-पाँच पेड़ हैं। उस फल को खाने से यह पता चल जायगा कि भूगर्भ में कहाँ पर क्या चीज़ है? क्या तुमने मेरे नेता की बात नहीं सुनी?"

उन्मत्त कैथे की महिमा के संबन्ध में गोलभरा गाँव में इभ्यु जाति के नेताओं के

बात कहता है, वह तथा हमारी वृच्छिक माता का मंदिर दोनों एक ही है। कल मैं तुम लोगों को उसके दल से मिला दूंगा। तभी हमें पता चलेगा कि तुम लोग असल में इस टापू में क्यों आये हो? परसों पूर्णिमा के दिन मैं उन्मत्त कैथा खाकर इस बात का पता लगाऊंगा कि भूगर्भ में वह मंदिर कहाँ पर है। तब तुम सब को मैं वृच्छिक माता की बलि चढ़ाऊँगा।"

शिखिमुखी कुछ बोलने को हुआ, पर जंगली नेता ने उसकी ओर पत्थर की कुल्हाड़ी दिखायी। तब बंदियों को

बातचीत करते नांगसोम ने सुन रखा था। वे लोग कहते थे कि कैथे के खाने वाले को यह दुनिया कुछ और ढंग से दिखायी देती है और वह फल सिर्फ़ वृच्छिक टापू में ही मिलता है। लेकिन उसने यह बात पहली बार यहीं पर जान ली कि भूगर्भ के रहस्यों को जानने की शक्ति भी वह फल रखता है।

नांगसोम ने सोचा कि किसी न किसी प्रकार उस कैथे को प्राप्त करने से शिथिलालय का पता लग जायगा और जिससे उनकी सारी समस्याएँ हल हो जायेंगी। लेकिन वहाँ तक पहुँचने के लिए वृच्छिक जातिवालों की आँखों में धूल झोंकनी होगी......

नांगसोम यह सोच ही रहा था कि इतने में वृच्छिक जाति का नेता एक पहाड़ी गुफ़ा के पास रुक कर बोला– "बंदियों को आज रात यहीं पर सो जाने को कह दो। सवेरा होते ही मैं निर्णय करूँगा कि क्या करना चाहिए।" यह कहकर वह नेता पहाड़ी गुफ़ा के अन्दर चला गया।

शिखिमुखी वग़ैरह पहाड़ी गुफ़ा के सामने वाले पेड़ के नीचे लेट गये। उन्हें बंदी बनाने वाले वृच्छिक जाति के लोग भी

पास में चट्टानों से लग कर बैठ गये और धीरे-धीरे ऊँघने लगे ।

नांगसोम को यह अच्छा मौक़ा-सा लगा । उसने सोचा कि शिखिमुखी से यह बता दे कि वह उन्मत्त कैथे के वास्ते पहाड़ की चोटी के निकट तालाब के पास जा रहा है, मगर उसे इस बात का डर लगा कि शायद वह उसे रोक दे । इसलिए वह चुपचाप उठ बैठा और तालाब की ओर चल पड़ा ।

नांगसोम जब तालाब के निकट पहुँचा, तब वृच्छिक जाति का एक आदमी उन्मत्त कैथे के पेड़ों के नीचे पहरा दे रहा था । नांगसोम को लगा कि उसे धोखा दिये बिना कैथे पाना नामुमक़िन है । यह सोच कर वह एक चट्टान की आड़ में छिप गया और धीरे से सीठी बजायी ।

सीठी की आवाज़ सुनकर पहरेदार यह पूछते चट्टान के पास दौड़ा आया कि वहाँ पर कौन है? नांगसोम झट चट्टान की ओट से बाहर आया और पीछे से पहरेदार के चेहरे पर ज़ोर से दे मारा । पहरेदार नीचे गिर पड़ा । नांगसोम ने एक मज़बूत बेल से पहरेदार के हाथ-पैर बांध दिये और उसे चट्टान से सटा कर बिठा दिया । तब वह कैथे के पेड़ों की ओर दौड़ पड़ा ।

एक-दो मिनटों के अंदर पहरेदार होश में आया । उसने कैथे के पेड़ों की तरफ़ देखा । उसे नांगसोम दिखाई पड़ा । तुरंत वह अपने बंधन तोड़ने के लिए छटपटाने लगा । बंधन तो नहीं खुले, लेकिन पास की चट्टान हिल उठी । यह सोच कर उसने अपना कंधा देकर उसे पीछे की ओर ढकेल दिया कि कहीं वह उस पर गिर न जाय । चट्टान हिल कर नीचे की ओर लुढ़क गयी । उसके साथ पहरेदार भी शिखीमुखी के दल के सोने वाले पहाड़ी ढलान की ओर लुढ़कने लगा । (और है)

मेहमानदारी

हठी विक्रमादित्य पेड़ के पास लौट आया। पेड़ से लाश उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति श्मशान की ओर चुपचाप चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने यों कहा—"राजन्, तुम्हारी लगन देखने पर मुझे धृढ़व्रत की कहानी याद आती है। उसकी लगन के समाने देवताओं को भी झुकना पड़ा। श्रम को भुलाने के लिए मैं तुम को धृढ़व्रत की कहानी सुनाता हूँ। सुनो।"

बेताल यों कंहने लगा—"श्वेतवन में धृढ़व्रत नामक व्यक्ति, आश्रम बनाकर रहा करता था। वह ब्रह्मचारी था। अकेला भी था। उसने तपस्या भी न की थी। लेकिन नियमित रूप से अतिथियों का सत्कार किया करता था। इस व्रत का पालन वह बड़ी ईमानदारी से करता था। किसी भी समय कोई

वेताल कथाएँ

मेहमान आवे तो अपनी कुटी में उसका स्वागत करता और उसके पास जो कुछ होता, खिलाकर भेज देता। अगर कभी वह अपनी कुटी से बाहर जाता तो केवल कंद, मूल और फल लाने के लिए ही जाता। वह अपनी जरूरत से ज्यादा कंद और फल लाता, जिस से मेहमानों को देने के लिए उसके पास थोड़ा-बहुत बचा रहता। इसलिए उसकी मेहमानदारी बिना रोक टोक चलती रही।

एक दिन आधी रात के समय किसी मेहमान ने आकर दर्वाजा खटखटाया। धृढ़व्रत ने दर्वाजा खोलकर देखा तो सामने एक मुनि खड़ा था। उसके चेहरे पर तेज दमक रहा था। मुनि ने धृढ़व्रत से पूछा-"वत्स, मुझे बड़ी भूख लगी है। कुछ खिला सकोगे?"

मुनि का कुटी के भीतर स्वागत करते धृढ़व्रत ने कहा-"आइये, पधारिये! मेरे पास जो कुछ रूखा-सूखा होगा, वह अवश्य खिलाऊँगा।"

"मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे साथ सात और लोग हैं। हम सब भूखे हैं।" मुनि ने जवाब दिया।

"उन को भी भीतर बुलाइये।" धृढ़व्रत ने कहा।

धृढ़व्रत ने तो यह बात कह दी, मगर सात और मेहमानों की बात सुन कर उसका कलेजा धक धक करने लगा। क्यों कि उसकी कुटी में दो-चार कंद और चार-पाँच फल मात्र थे। उन से आठ लोगों की भूख मिटाना नामुमक़िन है। बाहर जाकर फल लाने का वक़्त भी नहीं है। क्यों कि जंगल में रात के वक़्त खूंख्वार जानवर घूमा करते हैं।

फिर भी भगवान पर भरोसा रख कर धृढ़व्रत ने उन आठ अतिथियों का अपने कुटीर में स्वागत किया और बोला-

"आप सब लोग थोड़ी देर तक आराम कीजिये, मैं जल्द ही आप लोगों का खाना तैयार कर देता हूँ।" यह कह कर वह अग्निहोत्रवाले कमरे में चला गया।

धृढ़व्रत के आश्चर्य की सीमा न रही। उस कमरे में एक कोने पर कंद-मूल और फलों का ढ़ेर दिखाई पड़ा। उसने इस बात की चिंता न की कि ये सब कहाँ से आ गये। वह अपने अतिथियों को फल देकर फिर भीतर गया और कंद उबाल कर ले आया।

धृढ़व्रत की मेहमानदारी पर अतिथि सब बहुत प्रसन्न हुये। मुनि ने धृढ़व्रत से कहा–"तुम पुण्यात्मा हो। तुम्हारा यह पुण्य बेकार न जायगा। इसका फल तुमको अवश्य मिलेगा। हमें विदा कर दो।"

"आप लोग सबेरे तक आराम करके जाइये। इस रात को कहाँ जायेंगे?" धृढ़व्रत ने कहा।

"हमें दिन और रात का कोई फ़रक़ नहीं होता। हमें बहुत दूर जाना है। तुम इस बात की चिंता न करो।" मुनि ने कहा।

मुनि कुटी से बाहर आया। उसके अनुचर भी एक-एक करके बाहर आने लगे। तब उन में से आखिरी व्यक्ति ने

धृढ़व्रत से कहा–"पगले, तुम मुनि से बरदान मांगे बिना भेज देते हो? वें साक्षात् देवेन्द्र हैं। हम सब दिक्पाल हैं।"

धृढ़व्रत जल्दी जल्दी बाहर आया और मुनि के निकट पहुँच कर पूछा–"महानुभाव, आप अनुग्रह करेंगे तो मैं एक वर मांगना चाहता हूँ।"

देवेन्द्र ने प्रसन्न होकर जवाब दिया–"ज़रूर मांग सकते हो। पूछो, क्या चाहते हो?"

"बात कुछ नहीं, विश्राम के समय में पाँसे खेलना चाहता हूँ। किसी को बुलाऊँ तो कोई नहीं आता। मुझे आप ऐसा बरदान दीजिये जिस से मैं जिस किसी को भी बुलाऊँ, वह मेरे यहाँ आकर पाँसे खेले और मेरे हाथों में हार जायें।" धृढ़व्रत ने अपनी इच्छा प्रकट की।

देवेन्द्र का चेहरा पीला पड़ गया। उसने सोचा था कि यह आश्रमवासी प्राणों के साथ स्वर्ग जाने की इच्छा प्रकट करेगा या किसी अप्सरा को पत्नी के रूप में भेजने का वर मांगेगा। ऐसी कामना करता तो देवेन्द्र बड़ी खुशी के साथ उसे पूरा करता। मगर धृढ़व्रत ने तो क्षुद्र कामना की। फिर भी वचन देने के बाद देवेन्द्र को वर देना ही पड़ा। इसलिए बोला–"तुम जिस आदमी के साथ पांसे खेलना चाहते हो, खेल सकते हो। यही वर दे रहा हूँ।" यह कह कर देवेन्द्र अंतर्धान हो गया। उसके साथ अन्य दिक्पाल भी अंतर्धान हो गये।

उस दिन से लेकर धृढ़व्रत का समय पांसे खेलने में बीतने लगा। आसपास के आश्रमवासी आकर उससे पांसे खेलते और हार जाते। उसकी मेहमानदारी भी बेरोकटोक चलती रही।

एक दिन यमराज के दूत धृढ़व्रत की खोज में आये। अपने साथ पांसे लेकर धृढ़व्रत यमराज के दूतों के साथ उसके दरबार में गया। वहाँ पर चित्रगुप्त ने धृढ़व्रत का हिसाब देख यमराज से कहा—"यह बड़ा पुण्यात्मा है। इसने जीवन-भर मेहमानदारी की है, इसलिए यह स्वर्ग में एक करोड़ वर्ष तक सुख भोग सकता है। मगर यह पांसे खेलने का व्यसन रखता है, इसलिए इसे एक बार नरक का अवलोकन करा कर स्वर्ग में भेज देंगे।"
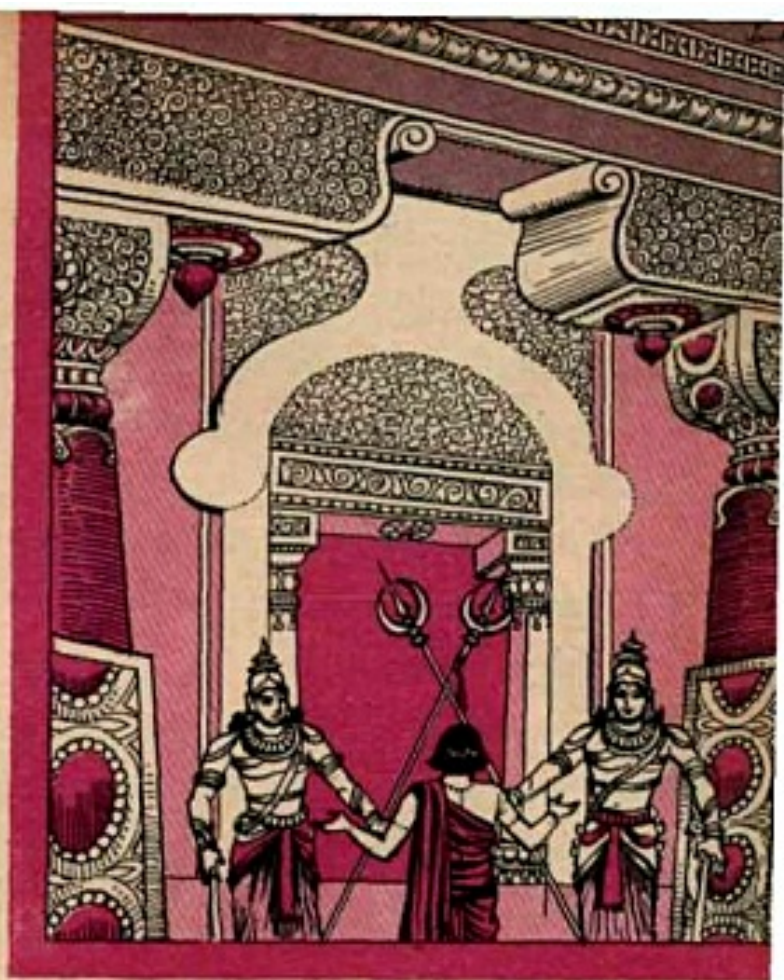
यमराज की आज्ञा लेकर दूतों ने धृढ़व्रत को नरक का अवलोकन कराया। नरक की यातनाएँ भोगने वालों को देख धृढ़व्रत दुखी हो गया और मन में सोचा कि यमराज अपने अतिथियों का सत्कार क्या ऐसे ही करते हैं।

नरक को देखने के बाद यमराज से विदा लेते हुए धृढ़व्रत ने कहा—"धर्मराज, मेरे साथ पांसे खेलिये। एक छोटा-सा दाँव भी लगायेंगे। अगर उस दाँव में मैं हार गया तो मैं अपने सारे पुण्य को खोकर पुनः जन्मधारण करने तक इसी नरक में रह जाऊँगा। अगर आप हार गये तो इस नरक के निवासियों को मेरे साथ भेज दीजिये।"

चित्रगुप्त के मना करते रहने पर भी अनसुनी करके यमराज धृढ़व्रत के साथ पाँसे खेल कर हार गये। इसलिए उन्हें नरक को खाली करके सभी पापियों को धृढ़व्रत के साथ भेजना पड़ा। यमराज के दूतों ने धृढ़व्रत तथा उसके अनुचरों को स्वर्ग के दर्वाजे के पास पहुँचा कर द्वारपाल से कहा—"इस धृढ़व्रत को यमराज ने एक करोड़ वर्ष तक स्वर्ग के सुख भोगने का वर दिया है।" यह कहकर दूत चले गये।

स्वर्ग के द्वारपाल ने धृढ़व्रत को भीतर जाने दिया, लेकिन उसके अनुचरों को रोक कर पूछा—"तुम सब कौन हो?"

"ये सब मेरे साथ आये हुए लोग हैं।" धृढ़व्रत ने जवाब दिया।

"इन लोगों को स्वर्ग में स्थान नहीं है।" द्वारपाल ने कहा।

"तुम्हारे देवेन्द्र जब मेरे अतिथि बने तब क्या मैं ने उनके साथ आये हुये लोगों से पूछा कि आप सब कौन हैं? यह बात तुम देवेन्द्र से पूछ आओ।" धृढ़व्रत ने कहा।

यह बात देवेन्द्र के कानों में पड़ी। उसने आगे बढ़ कर धृढ़व्रत का स्वागत किया और उसके साथ आये हुये लोगों को स्वर्ग में प्रवेश करने दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा—"राजन् धृढ़व्रत ने इस प्रकार युक्ति के साथ पापियों को स्वर्ग में प्रवेश कराया। क्या यह उचित है? इन्द्र ने धृढ़व्रत की इच्छा की पूर्ति क्यों की? इस सवाल का जवाब जानते हुये भी न दोगे तो तुम्हारा सर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा।"

इस पर विक्रमादित्य ने उत्तर दिया—"यह कहना सही नहीं है कि देवेन्द्र धृढ़व्रत की युक्ति के सामने झुक गया है। अतिथियों का सत्कार करना उत्तम व्रत है। इसीलिए केवल उसी एक व्रत का आचरण कर तपस्या तक न करनेवाले धृढ़व्रत को स्वर्ग का सुख प्राप्त हो गया है। ऐसे व्रत का पालन करनेवाले का पुण्य अनेक लोगों के पापों को हर सकता है। यह बात जान कर ही इन्द्र ने पापियों को स्वर्ग में प्रवेश दिया।"

राजा के इस प्रकार मौन-भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)
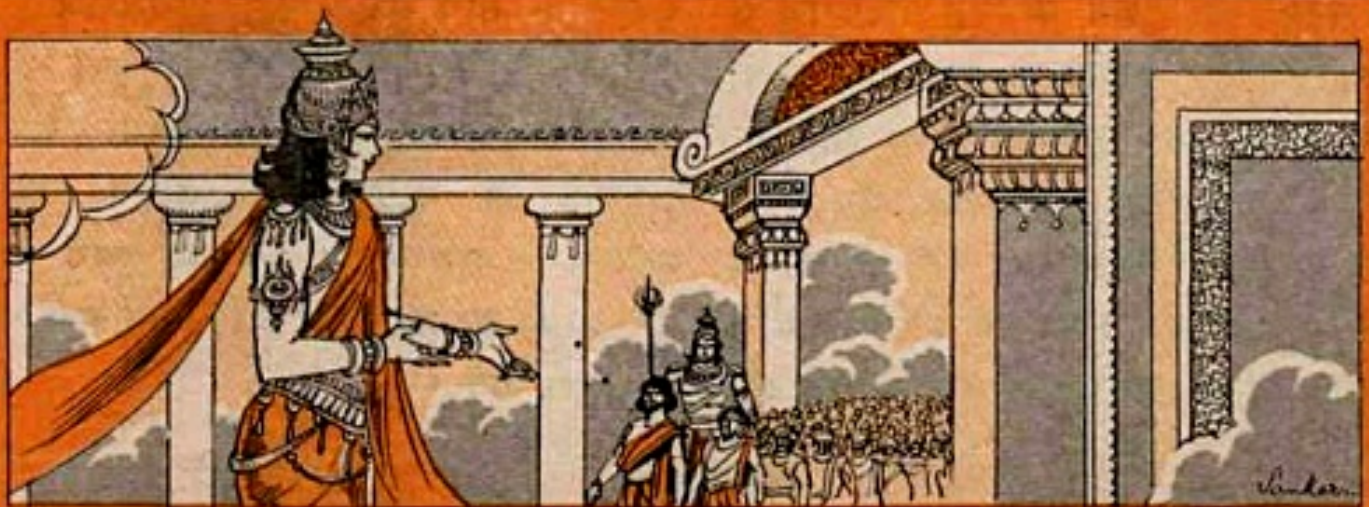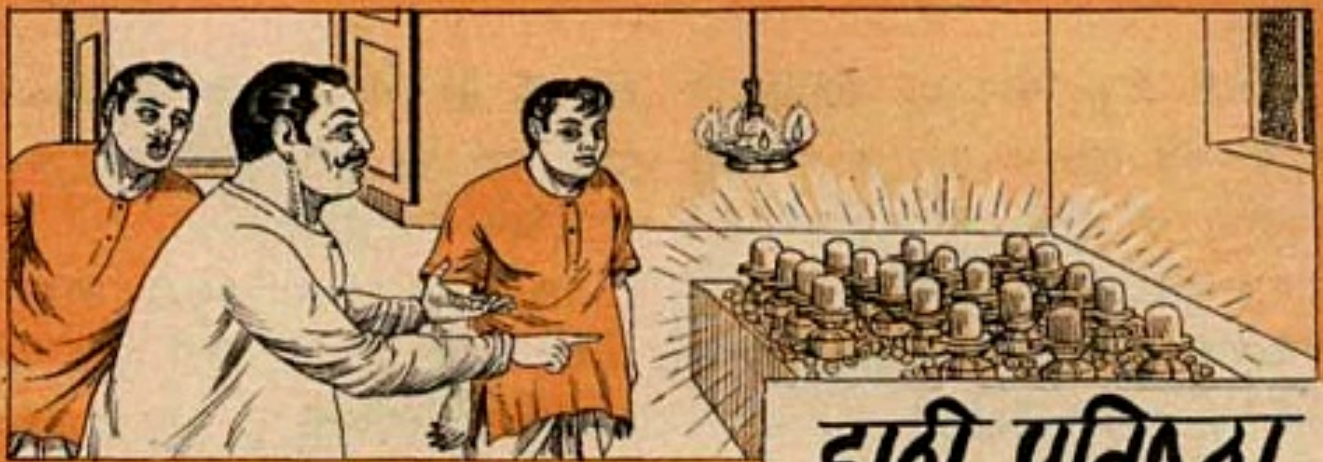
झूठी प्रतिष्ठा

एक गाँव में एक ज़मीन्दार था। उसके तीन बेटे थे। जब वे बड़े हुये, तब भी आपस में वे बड़ा स्नेह रखते थे। एक दूसरे का आदर करते थे। उन्हें अपने वंश की प्रतिष्ठा प्राणों से प्यारी थी। इसलिए वे सदा इस बात का ज़रूर ख़्याल रखते थे कि भूल से भी उनके परिवार की प्रतिष्ठा में कलंक न लगे।

ज़मीन्दार के घर में बीस सोने के शिवलिंग थे। रोज़ उनकी पूजा सभी भाई बदल-बदल कर किया करते थे। यह क्रम बराबर चलता रहा। एक दिन अचानक उन शिवलिंगों में से एक गायब हो गया।

निश्चय ही शिवलिंग की चोरी हो गयी थी। चोर कोई बाहर का नहीं, बल्कि तीनों भाइयों में से एक ज़रूर होगा। मगर यह पता चले कि तीनों में से अमुक भाई चोर है, तो बाक़ी दोनों को बड़ा दुख होगा। यह बात प्रकट होने पर वंश की प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी। इस से मौत ही भली है। इसलिए इस खतरे से बचना हो तो चोर का पता लगे बिना शिवलिंग का प्राप्त होना ज़रूरी है। लेकिन यह कैसे होगा?"

यह सोचकर तीनों भाई बहुत परेशान हुये। आखिर सब से बड़ा भाई गाँव के न्यायाधिकारी की सलाह लेने चल पड़ा। उसके साथ दूसरे व तीसरे भाई भी निकले। न्यायाधिकारी बड़ा होशियार था।

तीनों भाइयों ने न्यायाधिकारी के पास जाकर सारी बातें समझायीं और कहा—"चोरी का पता लगना हमें कतई

दिनकर राव

पसंद नहीं है। चोर का पता लगाने की भी हमें जरूरत नहीं है। चोरी गया लिंग का मिल जाना जरूरी है। इसलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे शिवलिंग को वापस दिलवा दे तो बड़ा उपकार होगा।"

"भाइयो, तुम्हारी समस्या को समझने की क्षमता मुझ में नहीं है। उसका परिष्कार मैं कैसे कर सकूंगा? अभी रात होने को है। आज रात को मेरा आतिथ्य स्वीकार कर यहीं पर आराम कर लो। कल सुबह मैं तुम्हारी समस्या को ध्यान से सुनकर उचित सलाह दूंगा। हो सके तो मैं आपकी समस्या को हल करने का पूरा प्रयत्न करूँगा।" न्यायाधिकारी ने समझाया।

इसके बाद न्यायाधिकारी घर के अन्दर चला गया। थोड़ी देर बाद लौटकर उन भाइयों से कहा—"तुम्हारी पूजा के लिए मेरी बेटी बीस शिवलिंगों का प्रबंध कर रही है। तुम लोग अपनी आदत के अनुसार पहले पूजा कर लो। उसके बाद हम सब मिल कर भोजन करेंगे।"

सबसे पहले बड़ा भाई पूजा करने गया। पूजा करते समय उसे उन्नीस
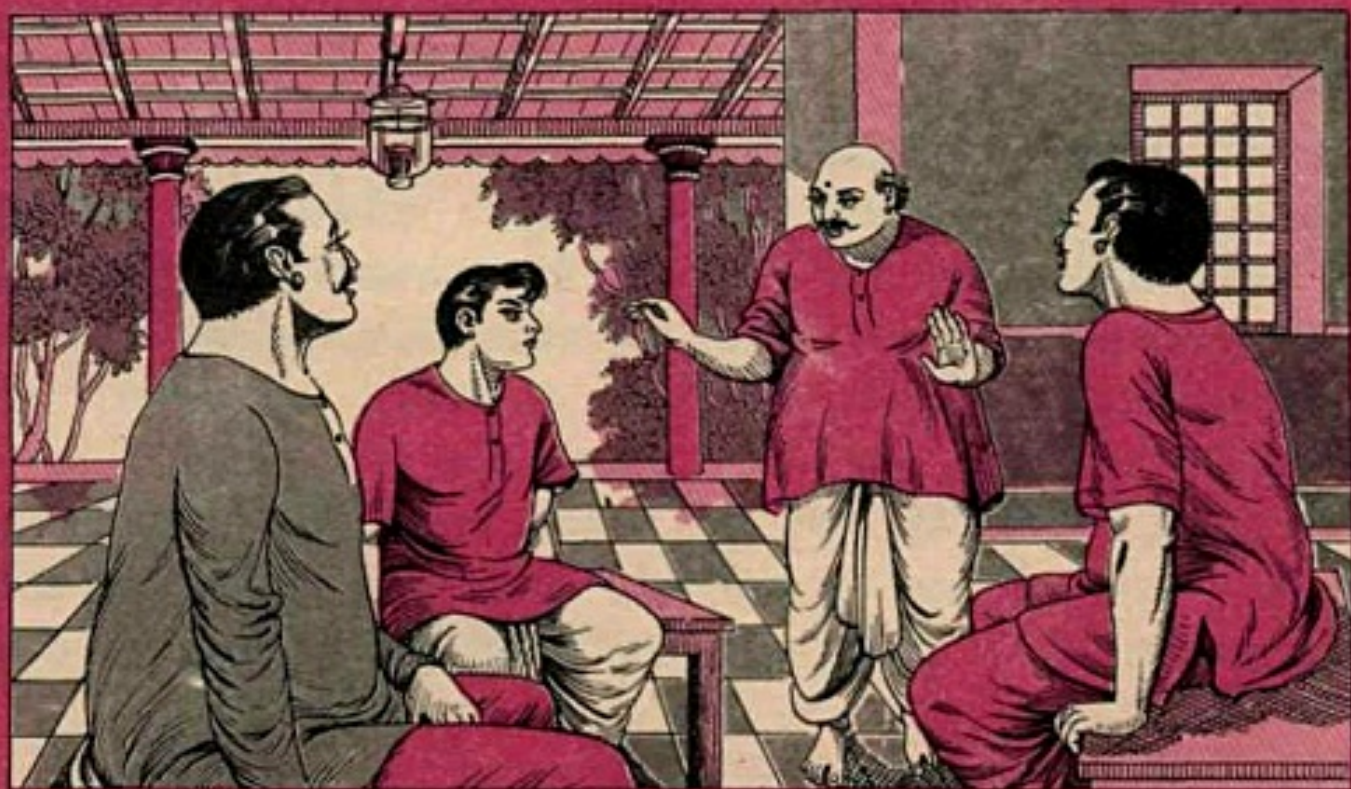
लिंग ही दिखाई पड़े। लेकिन उसने यह बात किसी से प्रकट न की। पूजा समाप्त कर वह चुपचाप बाहर चला आया।

इसके बाद दूसरा भाई पूजा करने गया। उसे भी उन्नीस लिंग ही दिखाई दिये। मगर उसने भी यह बात प्रकट न की। वह भी अपनी पूजा समाप्त कर लौट आया।

दूसरे भाई के बाद सबसे छोटा भाई पूजा करने गया। उसने भी उन्नीस लिंग ही देखे। वह घबड़ा गया। अपने घर में उसी ने लिंग की चोरी की थी। वह लिंग उस वक़्त उसके पास ही था। उसने सोचा कि उसके भाइयों ने उसकी तलाशी न ली है, शायद न्यायाधिकारी उसकी तलाशी ले तो क्या होगा? तब उसकी चोरी पकड़ी जायगी। यह सोचकर वह डर गया और अपने पास के शिवलिंग को निकाल कर उन उन्नीस शिव लिंगों में मिला दिया और अपनी पूजा समाप्त कर चुपचाप बाहर चला आया।

रात बीत गयी। सवेरे न्यायाधिकारी ने ज़मीन्दार के पुत्रों को बुला कर कहा—"भाग्य से तुम्हारा खोया हुआ शिव लिंग मिल गया है। लो, यह देखो। इस पर तुम लोगों के निशान भी हैं। लेकिन मुझ से यह न पूछो कि चोर कौन है? और इस शिवलिंग का पता कैसे लग गया है? क्यों कि मैं यह बात बिलकुल नहीं जानता हूँ।"

ज़मीन्दार के पुत्रों ने ध्यान से शिवलिंग की जाँच की। वह शिवलिंग उन्हीं के घर का था। वे लोग जिस काम से न्यायाधिकारी के यहाँ आये थे, वह काम सफल हुआ। इसलिए वे लोग न्यायाधिकारी को धन्यवाद देकर अपने घर वापस आ गये।

स्वायत्त मेकान्तहितं विधात्रा
विनिर्मितं छादन मज्जतायाः;
विशेषतः सर्वविदां समाजे
विभूषणं मौन मपंडितानां ॥ १ ॥

अपनी मूर्खता को छिपाने के लिए अनुकूल ही मानव की
ब्रह्मा ने सृष्टि की है। इसलिए मूर्ख मानवों का उत्तम गुण यही होगा कि
वे विद्वानों की सभा में
मौन धारण करे।

शिरश्शार्वं स्वर्गात्, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रा दुत्तुंगा दवनि, मवनेश्चापि जलधिं,
अधो गंगासेयं पद मुपगतास्तोक मथवा;
विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ २ ॥

गंगा आसमान से शिवजी के शिर पर गिरी, वहाँ से हिमालय से
होते हुए पृथ्वी पर उतरी, पृथ्वी से बहते सागर में विलीन हुई,
सागर से पाताल लोक में पहुँच गयी। इस प्रकार लोग
अनेक प्रकार से पतनावस्था को प्राप्त कर मूर्ख बन जाते हैं।

मूर्ख

भाग्य का खेल

प्राचीन काल में मगध पर राजा विक्रमसिंह राज्य करता था। कई वर्षों तक उसे कोई संतान न हुई। एक बार मगध पर जंगली जानवरों का हमला हुआ। इसलिए विक्रमसिंह ने जंगल में जाकर शिकार खेलना चाहा। शिकार खेल कर लौटते वक़्त राजा विक्रमसिंह को एक सुंदर बालक दिखाई पड़ा। विक्रमसिंह बड़ी प्रसन्नता के साथ उस शिशु को घर ले आया। उसका जयसिंह नामकरण किया और बड़े प्रेम से अपने सगे पुत्र की भांति उसका पालन-पोषण करने लगा।

जयसिंह के मिलने के चन्द वर्ष बाद विक्रमसिंह की रानी गर्भवती हुई। नौ मास बाद उसे एक पुत्र पैदा हुआ। उस बालक का विजयसिंह नामकरण किया गया। जय और विजय लाड़-प्यार से पलने लगे।

कुछ वर्ष बाद जब राजा विक्रमसिंह बूढ़ा हो गया, तब उसने उन दोनों में से एक का युवराज के रूप में पट्टाभिषेक करना चाहा। लेकिन वह यह निर्णय नहीं कर पाया कि दोनों में से कौन ज्यादा युवराज बनने योग्य है? राजा दोनों राजकुमारों से बराबर प्रेम करता था। जयसिंह उम्र में बड़ा है, मगर सगा पुत्र नहीं है। विजयसिंह सगा पुत्र है, लेकिन उम्र में छोटा है। बड़े को छोड़ कर छोटे को युवराज बनाना न्याय संगत न होगा।

राजा विक्रमसिंह निर्णय न कर पाया। उसने अपने मंत्री की सलाह मांगी। मंत्री ने जयसिंह को युवराज बनाने की सलाह दी। क्योंकि जयसिंह मेधावी, पराक्रमी और प्रजा के लिए प्यारा था। उसके सामने विजयसिंह दुर्बल और दुष्ट बुद्धिवाला था। यह बात राजा भी स्वयं

नलिनी जायसवाल
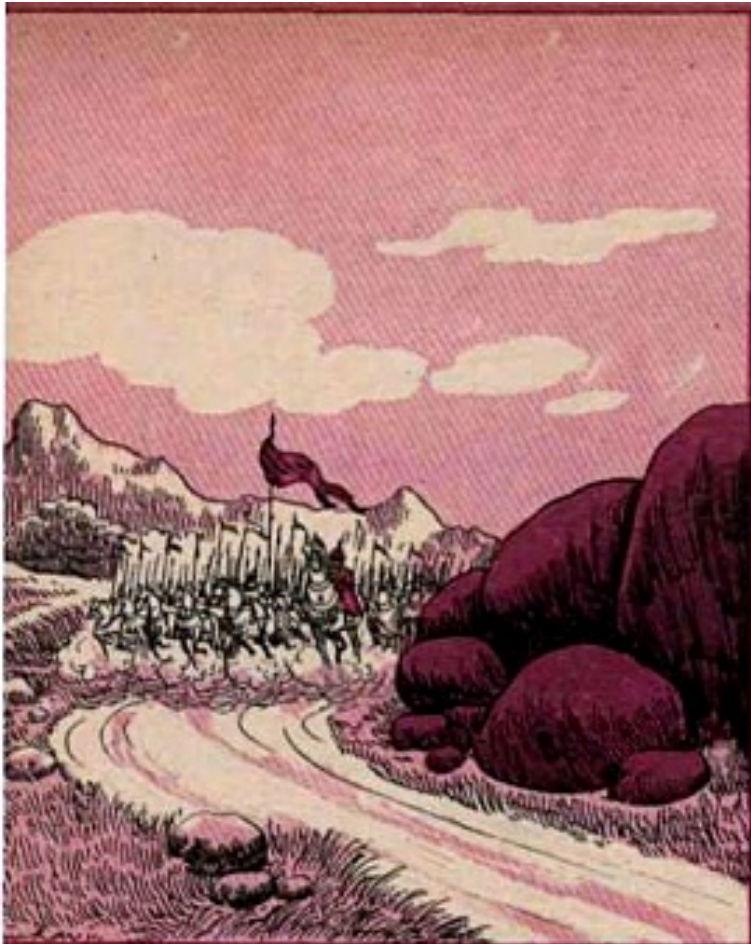
जानता था। इसलिए राजा ने मंत्री की सलाह के अनुसार जयसिंह को युवराज बनाया। प्रजा भी बहुत प्रसन्न हुई।

विजयसिंह को राजा का निर्णय अच्छा न लगा। उसे यह निर्णय इसलिए अनुचित प्रतीत हुआ कि राजा ने अपने सगे पुत्र को राजगद्दी न देकर पराये को युवराज बनाया है। वह यह सोचकर समय की प्रतीक्षा करने लगा कि कभी न कभी उसे राजगद्दी पर अधिकार कर लेना है।

कुछ साल बीत गये। राजा विजयसिंह का देहांत हो गया। सारा देश शोक में डूबा हुआ था। यही मौक़ा मान कर विजयसिंह ने अपने पड़ोसी राजा रविवर्मा को गुप्त रूप से अपने देश पर हमला करने का स्वागत किया। विजयसिंह का यह विचार था कि शोक सागर में डूबी प्रजा पर रविवर्मा आसानी से विजय प्राप्त करेगा और जीतने के बाद वह राज्य उसे वापस करेगा।

विजयसिंह के विचार और कुचालों को बराबर जयसिंह भांप लिया करता था। इसलिए उसने हठ करके यह कार्य संपन्न किया कि राजा विक्रमसिंह की गद्दी पर विजयसिंह को ही अधिकार है और उसी को गद्दी पर बिठाया।

विजयसिंह ने गद्दी पर बैठते ही पड़ोसी राजा रविवर्मा को खबर भेजी कि वह मगध पर हमला न करे। रविवर्मा ने पहले ही जान लिया था कि विजयसिंह बेवकूफ़ है और उसके राजा होने के कारण उस पर वियज प्राप्त करना और भी आसान काम है। अतः वह मगध पर हमला करने निकला।

यह समाचार सुनते ही विजयसिंह एक दम कांप उठा। सारा देश पट्टाभिषेक के उत्सव में डूबा हुआ था। युद्ध के लिए जनता तैयार न थी। उसने जो पत्थर

फेंका था, वह उसी पर आ लगा था। इसलिए विजयसिंह जयसिंह की शरण में गया। जयसिंह भी बेचारा क्या कर सकता था।

"मैं स्वयं राजा रविवर्मा के पास दूत बन कर जाऊँगा और उनके दिल को बदलने का प्रयत्न करूँगा।" जयसिंह ने कहा।

रविवर्मा के सामने जयसिंह को देख वृद्ध मंत्री सब चकित रह गये। जयसिंह पूर्ण रूप से राजा रविवर्मा जैसे लग रह था। रविवर्मा भी जयसिंह की उम्र में उसी की भांति दिखाई देता था।

यों तो राजा रविवर्मा के कई रानियाँ थीं, परंतु उन्हें बहुत समय तक कोई संतान न हुई थी। कई साल बाद बड़ी रानी ने एक पुत्र का जन्म दिया। बाक़ी रानियाँ ईर्ष्या से जल उठीं और धोखे से शिशु को जंगल में फेंकवा दिया। राजा विक्रमसिंह को वही शिशु जंगल में प्राप्त हो गया था।

राजा रविवर्मा ने अपने शिशु के वास्ते बहुत खोज करायी, लेकिन कोई फ़ायदा न रहा। वह बालक अब स्वयं राजा रविवर्मा के सामने उपस्थित था। राजा रविवर्मा और जयसिंह की रूपरेखाओं में समानता तो है ही, साथ ही रविवर्मा के पुत्र के खोने का दिन और विक्रमसिंह को जंगल में उस शिशु के मिलने का भी एक ही था। अब पूर्ण रूप से यह साबित हो गया कि जयसिंह राजा रविवर्मा का ही पुत्र है।

इस पर रविवर्मा ने युद्ध करने का संकल्प छोड़ दिया। उसकी इकलौती बेटी का विवाह विजयसिंह के साथ करके उसे अपना दामाद बनाया। जयसिंह को अपने राज्य में ले जाकर उसे युवराज बनाया। रविवर्मा की मृत्यु के बाद जयसिंह ही राजा बना। फिर भी जयसिंह और विजयसिंह के बीच जो भाईचारे का संबंध था, वह अनेक वर्षों तक क़ायम रहा।

कार्तिक पुराण

एक गाँव में कैलाश और पार्वती नामक एक ब्राह्मण दंपत्ति था। वे गरीब थे। एक जून खाना मिलता तो दूसरा जून उपवास करते।

एक दिन पार्वती ने अपने पति से कहा–"हम इस तरह कितने दिन उपवास कर सकते हैं? मधुकरी क्यों नहीं करते?"

"यह तुम क्या कहती हो? मैं मधुकरी करूँ तो परिवार की प्रतिष्ठा धूल में मिल जाय!" कैलाश ने जवाब दिया।

एक दिन पार्वती मंदिर में पुराण-पाठ सुनने गयी। कई लोग पुराण सुनने आये। पुराण सुनकर लौटते वक्त थोड़ी-बहुत दक्षिणा उस ब्राह्मण को देकर चले गये।

पार्वती ने घर लौटकर मंदिर की बात अपने पति को सुनायी और कहा– "तुम भी पुराण पाठ करो, चार पैसे हाथ लगेंगे।"

कैलाश को यह सलाह बड़ी अच्छी लगी, लेकिन उसने सोचा कि अपने गाँव में तो पुराण-पाठ होता ही है, इसलिए पड़ोसी गाँव में जाकर पुराण-पाठ करना फ़ायदेमंद होगा। इसलिए दूसरे दिन सवेरे पार्वती पड़ोसी गाँव में गयी और गाँववालों को बताया कि आज की संध्या को उसका पति पुराण-पाठ करेगा। सब लोग आकर सुन सकते हैं।

वह कार्तिक महीना था। इसलिए कैलाश कार्तिक पुराण लेकर पड़ोसी गाँव में गया और वहाँ के मंदिर में पुराण-पाठ शुरू किया। गाँव के छोटे-बड़े सब आकर पुराण-पाठ ध्यान से सुनने लगे।

पाठ के बीच में चोरी का प्रसंग आया। कैलाश ने कहा–"चोरी करना महान है।

वीरेन्द्र तिवारी

कार्तिक महीने में चोरी करने वाले नरक की यातानाएँ भोगते हैं।"

उपस्थित लोग मौन थे। इसलिए पुराण-वाचक ने सोचा कि पाठ की बातें श्रोता ठीक से नहीं समझ रहे हैं। इसलिए उसने उदाहरण के साथ समझाना चाहा। अतः उसने सामने बैठे गाँव के मुखिये और उसकी बगल में बैठे उसके बहनोई की ओर इशारा करते हुए कहा—"मान लो, इस आदमी ने उस आदमी के यहाँ से एक हज़ार रुपयों की चोरी की है।"

यह बात सुनते ही गाँव का मुखिया क्रोध से भर उठा। वह बड़ा धनी था। उसने तैश में आकर कहा—"यह तुम क्या कहते हो? क्या मैंने चोरी की है? तुमने मेरे चोरी करते क्या देख लिया? बस करो, यहाँ से चले जाओ।" ये शब्द कहते मुखिया उठ खड़ा हुआ।

"भाइयो, ठहर जाओ। मेरी बात पूरी तौर से सुन लो।" कैलाश ने गाँववालों से मिन्नत की, लेकिन कोई फ़ायदा न रहा। मुखिया यह कहते चलता बना कि "फिर कभी इस गाँव में क़दम रखा तो बड़ा बुरा होगा।"

दूसरे दिन पार्वती ने एक और गाँव में जाकर सूचना दी कि उसका पति आज
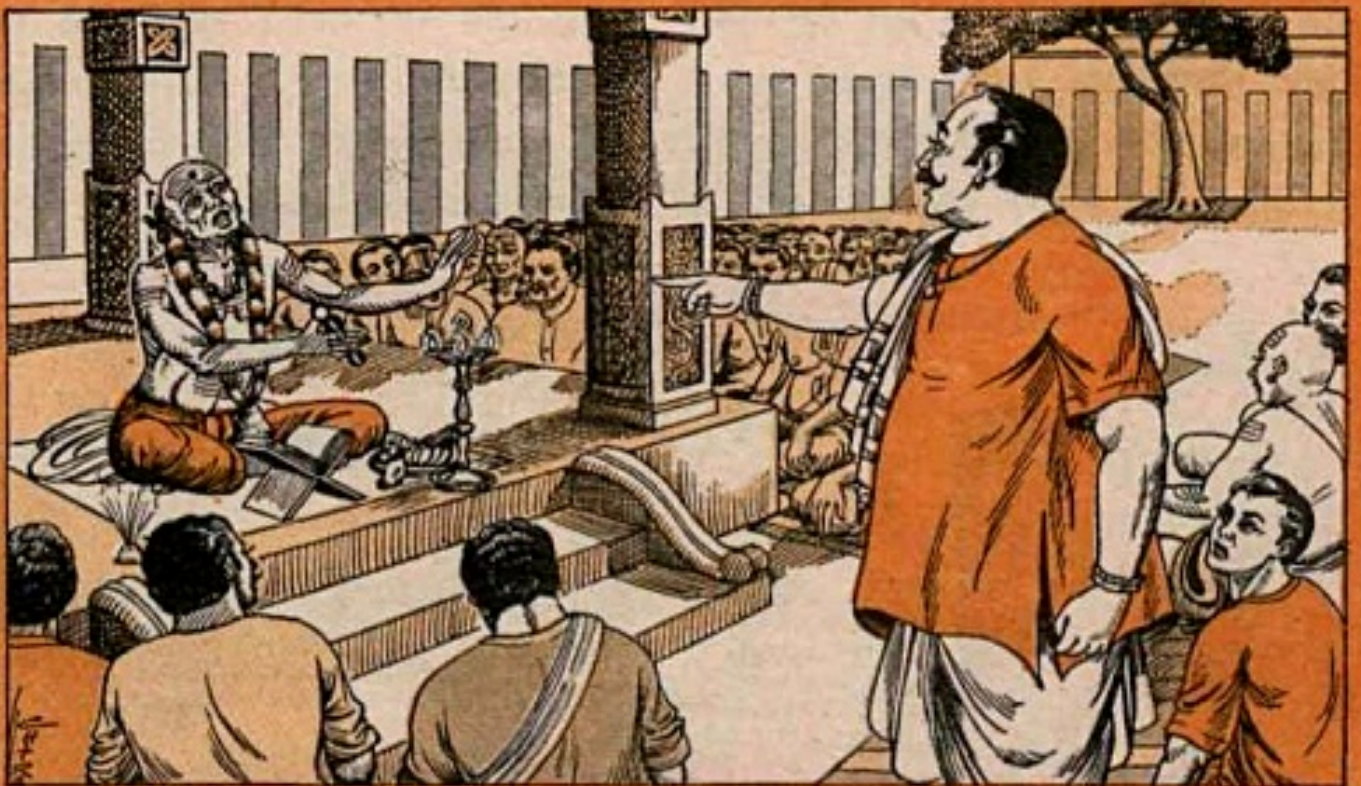
संध्या को पुराण-पाठ करेगा। पुराण सुनने के लिए बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई।

पुराण का पाठ करते कैलाश ने कहा—"भक्तो! कार्तिक का महीना पुण्य का महीना है। इस महीने में एक रुपया दान करने से दस रुपयों के दान का फल मिलता है।" ये शब्द कह कर उसे स्पष्ट करने के विचार से अपनी पत्नी तथा उसकी बगल में बैठे एक और स्त्री को दिखाते हुए बोला—"मान लो, इसने उसको एक रुपया दान दिया है।"

बात पूरी भी न हो पायी थी, दूसरी औरत क्रोध में आकर बोली—"क्या मैं दूसरों से दान लेती हूँ? मैं भिखारिन थोड़े ही हूँ? तिस पर भी ब्राह्मणों का दान लेकर मैं अपने सर पाप क्यों मोल लूँगी? अब अपना पुराण बंद कर यहाँ से चले जाओ।" ये शब्द कहते वह औरत उठ कर चली गयी। वह उस गाँव के मुखिये की औरत थी। इसलिए उसके जाते देख गाँव के सभी लोग उठ कर चले गये।

तीसरे दिन एक और गाँव के मंदिर में कैलाश पुराण पढ़ कर अपनी पत्नी को सुनाने लगा। धीरे-धीरे रास्ते चलने वाले ठहर कर पुराण सुनने लगे।

कैलाश ने ब्राह्मण-हत्या का प्रसंग बताते हुए कहा—"ब्राह्मण की हत्या करना महान पाप है। कार्तिक में ब्राह्मण की हत्या करने वाला रौरव नरक में जायगा।" ये शब्द कह कर सामने बैठे एक ब्राह्मण की ओर संकेत करके बोला—"मान लो, मैंने इस ब्राह्मण को मार डाला..."

"क्या बकते हो? मुझे मार डालोगे?" ये शब्द कहते ब्राह्मण ने कैलाश को पीटा। पुराण पठन रुक गया। कैलाश को रुपये तो नहीं मिले, साथ ही उसका बदन फूल गया। उस दिन से कैलाश ने फिर कभी पुराण का पाठ नहीं किया।

सिंदबाद की अद्भुत यात्राएँ

सिंदबाद एक दिन शाम को ठण्ड़ी हवा में घर के आंगन में बैठा हुआ था कि रास्ते से चलते कुछ व्यापारी उसे दिखायी पड़े। सिंदबाद ने उनको देखते ही समझ लिया कि वे दूर देशों से लौट रहे हैं। क्योंकि बहुत समय के उपरांत अपने देश को लौटते उनके चेहरों पर आनंद छाया हुआ था। यात्रा न करने वाला व्यक्ति उस आनन्द को समझ नहीं पायगा।

उन व्यापारियों को देखने पर सिंदबाद के मन में फिर एक बार विदेशों के साथ व्यापार करने की इच्छा जाग उठी। तुरंत उसने माल खरीदा और बस्रा जा पहुँचा। वहाँ पर एक जहाज़ समुद्री यात्रा के लिए तैयार खड़ा था। उसमें कई व्यापारी और सरकारी कर्मचारी भी थे। सिंदबाद माल जहाज़ पर चढ़वा कर अन्य यात्रियों के साथ रवाना हुआ।

जहाज़ एक नगर से दूसरे नगर तथा एक देश से दूसरे देश की यात्रा करने लगा। हर जगह ख़रीद-फ़रोख़्त चला। रास्ते में यात्रियों ने अनेक विचित्र बातें देखीं। एक दिन सभी यात्री जहाज़ पर विश्राम कर रहे थे, तब एक मल्लाह ज़ोर से चिल्ला पड़ा और पागल की तरह अपनी पगड़ी नीचे पटक कर दाढ़ी नोचने लगा।

सब यात्रियों ने उसे घेर लिया और उसका कारण पूछा।

"हम लोग रास्ता भटक गये हैं। एक ऐसे समुद्र में पहुँच गये हैं जिसके बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है। अल्लाह ही हमें बचावें। सब लोग अल्लाह से दुआ मांग लीजिये।" प्रधान मल्लाह ने कहा।

उसी वक़्त ज़ोर की आंधी चली। उसका धक्का खाकर जहाज़ का मस्तूल

टूट गया। जहाज आंधी में बहने लगा। यात्री सब हाहाकर कर उठे। जल्द ही जहाज एक पहाड़ से टकरा कर चूर-चूर हो गया। कुछ यात्री समुद्र में डूब गये। सिंदबाद बचे हुए यात्रियों के साथ समुद्र में तैरते हुए पानी के बीच में स्थित एक टीले पर पहुँचा और इस तरह अपनी जान बचायी।

समुद्र में फैला हुआ वह टीला एक टापू में है। उस टापू से टकरा कर कई जहाज़ फूट गये थे। उनके अवशेष और माल किनारे पर बिखरे पड़े थे। कुछ पेटियों से क़ीमती चीजें बाहर झांक रही थीं।

आंधी के थपेड़ों से बच कर जो लोग किनारे लग गये, उनके साथ सिंदबाद भी पैदल चल कर एक पहाड़ी नाले के निकट पहुँचा। वह नाला थोड़ी दूर तक समतल मैदान में बह कर एक गुफ़ा में ग़ायब हो गया था। उस नाले के दोनों तरफ़ और पानी में भी मानिक, सोना व चाँदी के टुकड़े चमक रहे थे। वहाँ पर जो संपत्ति फैली थी, उतनी संपत्ति को शायद ही किसीने कहीं देखा होगा। नाले के दोनों तरफ़ मुसब्बर के पेड़ थे।

उस टापू पर सिंदबाद को एक और अद्भुत वस्तु दिखाई दी। वह आंबर था। धूप में गल कर वह कोलतार की भांति समुद्र की ओर बह रहा था। उस आंबर को मछलियों ने निगल डाला, मगर हज़म न कर सकने के कारण वमन करने से वह जम गया और किनारे की ओर लग रहा था। उस आंबर की सुगंधि सारे टापू में फैल रही थी।

टापू-भर में ऐसी क़ीमती संपत्ति के होने पर भी वह मानवों को प्राप्त नहीं हो रही थी। क्योंकि उस प्रदेश में जो भी जहाज़ पहुँचता है, वह टीले से टकरा कर चूर-चूर हो जाता है। इसलिए सिंदबाद

और उसके साथी भी उस संपत्ति के होते हुए भी भूख से तड़पने लग गये थे। उन लोगों के पास जो कुछ खाना था, उसे सबने बराबर बांट लिया। लेकिन इस तरह कितने दिन चल सकते थे? सिंदबाद तो उपवास करने का आदि हो गया था, इसलिए थोड़ा-थोड़ा करके खाते हुए उसने कुछ दिन तक प्राण बचाये। बाक़ी लोगों ने अपने हिस्से का खाना जल्द पूरा किया और एक एक करके भूख से मरने लगे। मरे हुए लोगों को जीवित रहने वाले लोग समुद्र के किनारे दफ़ाना देते थे। कुछ दिन बाद आख़िरी आदमी को दफ़ना कर उस टापू में केवल सिंदबाद बच रहा। उसके मरने पर दफ़नानेवाला भी कोई न बचा था।

सिंदबाद का खाना भी खतम हो गया। भूख उसे सताने लगी। अंतिम समय के लिए उसने एक गड्ढा खोद लिया और उसकी लाश पर बालू गिराने का काम हवा पर छोड़ दिया।

अपने भविष्य के बारे में विचार करने पर सिंदबाद को बड़ा दुख हुआ। पाँच बार उसने मरते-मरते जान बचायी थी, फिर भी उसकी अक़्ल ठिकाने न लगी। क्या धन के वास्ते उसे अपने प्राणों को जोखिम में डालना चाहिये था? उसके

की लंबी डालों को तोड़ डाली, उनको एक डोंगी के रूप में तैयार किया। उन पर टूटे जहाज़ की लकड़ियों को बिछाया। उन पर बड़े बड़े हीरे, मानिक आदि चुन चुन कर लाद दिया। दो लठ्ठों से डांडों का काम लिया। तब वह तेज़ धारा में अपनी डोंगी को डाल दिया। डोंगी पानी पर सरकने लगी।

नाला जिस गुफ़ा से होकर बहता था, उसी गुफ़ा में डोंगी भी घुस गयी। गुफ़ा के अन्दर घना अंधेरा था। नाला चक्कर काटते बह रहा था, डोंगी भी नुक्कड़ों पर चट्टानों से टकराते आगे बढ़ चली। जहां-तहां उस सुरंग से सिंदबाद का सर टकरा जाता था। घना अंधेरा था, इसलिए सर झुका कर चलना उसने मुनासिब समझा। धीरे धीरे धारा की गति तेज़ हो गयी। अब डांड चलाने की भी ज़रूरत न थी।

सिंदबाद को लगा कि इस धारा में बह कर मरने की अपेक्षा भूख से तड़प कर मर जाना कहीं बेहतर है। लेकिन लाचार होकर वह औंधे मुंह डोंगी पर लेट पड़ा और सो गया।

सिंदबाद बेहोश हो गया। होश में आने पर उसने देखा कि वह एक मैदान में

पास कई पीढ़ियों तक बैठ कर खाने के लिए काफ़ी संपत्ति जो है। यह सोचकर वह मन ही मन पछताने लगा।

उस चिंता की हालत में भी सिंदबाद का दिमाग तेज़ी के साथ काम कर रहा था। वह सोचने लगा कि यह नाला गुफ़ा में घुस गया है, क्या वह कहीं न कहीं बाहर न निकलेगा? वह नाला कहाँ तक बहता है? यहाँ पर भूख से तड़प कर मरने की अपेक्षा यह जानना उचित न होगा कि यह नाला कहाँ जा पहुँचता है?

इस विचार ने सिंदबाद के मन में नयी स्फूर्ति पैदा कर दी। उसने मुसब्बर के पेड़ों

लेटा पड़ा है। धूप खिली हुई थी। उसकी डोंगी नदी के किनारे एक पत्थर से बंधी हुई है। उसके चारों तरफ़ लोगों की भीड़ लगी हुई है। वे लोग इथियोपिया के निवासी थे।

सिंदबाद के आँखें खोलने पर लोगों ने उसका परामर्श किया। मगर उनकी भाषा सिंदबाद की समझ में न आयी। फिर भी उनमें से एक ने आगे बढ़ कर अरबी भाषा में पूछा–"तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? हमारे देश में किस काम से आये हो? हम लोग किसान हैं। हम खेत सींच रहे थे, तुम नदी में बहते आ रहे थे, इन्हीं लोगों ने डोंगी को रोका, नदी के किनारे उसे बांध दी। तुमको यहाँ लाकर लिटाया।"

"भूख से मरता जा रहा हूँ। थोड़ा खाना खिलाओ, तब मैं विस्तारपूर्वक अपनी कहानी सुनाऊँगा।" सिंदबाद ने जवाब दिया।

तुरंत उन लोगों ने सिंदबाद को खाना खिलाया। सिंदबाद को लगा कि उसकी जान में जान आ गयी है। उसने अपनी सारी कहानी सुनायी। उसकी कहानी का अरबी भाषा जाननेवाले ने अनुवाद करके बाक़ी लोगों को सुनाया। उन सब ने

आश्चर्य के साथ आपस में बातचीत की। इसके बाद उसे अपने राजा के पास ले जाकर उसकी कहानी सुनाने का निश्चय किया। सिंदबाद ने भी अपनी सम्मति दी। वे लोग तब सिंदबाद तथा उसकी संपत्ति को उठा कर राजा के पास ले गये।

इथियोपिया के राजा ने सिंदबाद का अच्छा स्वागत किया। उसकी सारी कहानी सुनकर उसका अभिनंदन किया। सिंदबाद के लाये रत्नों को देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजा खुद रत्नों का पारखी था। सिंदबाद ने राजा को हर क़िस्म के एक एक रत्न को चुनकर भेंट किया। राजा ने प्रसन्न होकर सिंदबाद को अपने अतिथि बनाकर उसका आदर किया।

राजा के दरबारियों ने बगदाद, वहाँ के खलीफ़ा तथा उसके शासन के संबंध में कई सवाल पूछे। उनके जवाब सुनकर राजा ने कहा—"लगता है कि तुम्हारे खलीफ़ा हारूनल रशीद बड़े ही योग्य व्यक्ति मालूम होते हैं। मैं उनके प्रति अपना स्नेह प्रकट करते हुए तुम्हारे साथ उनको भेंटें भेजना चाहता हूँ।"

"ज़रूर भेजिये। मैं आपकी भेंटों को उन्हें पहुँचा दूँगा और यह भी निवेदन करूँगा कि आप अत्यंत योग्य और स्नेह पूर्ण स्वभाव के हैं।" सिंदबाद ने समझाया।

तुरंत राजा ने खलीफ़ा के लिए पुरस्कार मँगाये। उनमें एक सुराही थी, वह छे इंच लंबी थी। वह मानिक से निर्मित थी। सुराही भर में उत्तम जाति के बड़े बड़े मोती थे। पुरस्कारों में एक कालीन भी थी, उसे साँप के चमड़े से तैयार किया गया था। कहा जाता है कि उस पर बीमारों के लेटने से वे स्वस्थ हो

जाते हैं। अन्य पुरस्कारों में दो सौ कपूर की गोलियाँ, हाथी के बड़े-बड़े दाँत और आपाद मस्तक आभूषणों से लदी एक दासी भी थी।

राजा ने खलीफ़ा के नाम लिखा पत्र सिंदबाद के हाथ में देते हुए कहा—"मैं छोटे से पुरस्कार खलीफ़ा के नाम भेज रहा हूँ। इसलिए मेरी तरफ़ से उनसे क्षमा माँगो। इन पुरस्कारों से बढ़कर मूल्यवान वस्तु उनके प्रति मेरा स्नेहभाव ही है...लेकिन सिंदबाद, तुम यहीं पर रह जाओगे तो मैं बड़ा खुश हो जाऊँगा। मैं इस बात का ख्याल रखूँगा कि तुमको किसी प्रकार की तक़लीफ़ न होने पावे। खलीफ़ा के नाम ये पुरस्कार मैं किसी दूसरे आदमी के ज़रिये भेज दूँगा। बताओ, तुम यहाँ रहना चाहते हो?"

सिंदबाद ने राजा से इस बात की क्षमा माँगी कि वह यहाँ पर न रह सकेगा। क्योंकि शीघ्र बस्रा के लिए एक जहाज़ रवाना हो रहा है। अलावा इसके उसके मन में अपने देश, रिश्तेदार व परिवार के लोगों को देखने की इच्छा है, ये शब्द कहकर उसने राजा से अनुमति माँगी।

राजा के मन में सिंदबाद को जबर्दस्ती अपने देश में रोकने की इच्छा न रही।

इसलिए उसने जहाज़ के मल्लाह और उसके यात्रियों को बुलाकर सिंदबाद का परिचय कराया और उसके जहाज़ का किराया राजा ने खुद चुकाया। तब सिंदबाद की रक्षा का भार उनको सौंप दिया। सिंदबाद के रवाना होते समय उसे भी राजा ने खूब पुरस्कार दिये।

सिंदबाद ने राजा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और सबसे विदा लेकर रवाना हुआ। यात्रा आराम से चली। कुछ दिन बाद वह बस्त्रा पहुँचा। बस्त्रा से बगदाद के लिए निकल पड़ा।

सिंदबाद बगदाद के बंदरगाह में उतरते ही सीधे राजमहल में गया। खलीफ़ा के दर्शनकर उसे इथियोपिया के राजा के पुरस्कार और पत्र भी सौंप दिया।

खलीफ़ा ने पत्र पढ़कर पुरस्कारों की जाँच की। तब पूछा—"लगता है कि ऐसे क़ीमती पुरस्कार भेजनेवाला राजा बड़ा धनी होगा। क्या सचमुच वह धनवान है?"

"सरकार, इसमें कोई संदेह नहीं है। इथियोपिया के राजा न केवल धनवान हैं, बल्कि न्यायशील भी हैं। वे बड़े ही मेधावी हैं। उनके शासन में प्रजा बड़ी सुखी है। राजा प्रजा को अपनी संतान की तरह देखता है।" सिंदबाद ने जवाब दिया।

खलीफ़ा ने सिंदबाद को कई पुरस्कार दिये और उपाधियाँ भी देकर उसका सत्कार किया। उसने अपने दरबारी लेखकों को बुला कर सिंदबाद के अनुभवों को लिपिबद्ध कराया और उन्हें आदेश दिया कि उसकी कथा को समस्त ऐतिहासिक पत्रों में जोड़ दे।

इसके बाद सिंदबाद खलीफ़ा से आज्ञा लेकर अपना घर लौटा। अपने परिवार तथा रिश्तेदारों से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। फिर वह सुख-भोग भोगते आराम के साथ अपने दिन काटने लगा।

फांसी

राजा नागादित्य बड़ा पराक्रमी था। उसका राज्य संपन्न था। उसके पास बड़ी ज़बर्दस्त सेना थी। इसलिए आस-पास के राजा उसका नाम सुनते ही कांप उठते थे। उसे कई वर्षों तक कोई संतान न थी। आखिर एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम देवादित्य रखा गया। राजकुमार को राजा और प्रजा भी बहुत चाहते थे। देवादित्य बड़े होने पर सभी विद्याओं में पारंगत हो गया।

नागादित्य के राज्य के बाहर एक भयंकर जंगल था। उसे लोग भूतों का जंगल पुकारते थे। उसमें जाने से सब कोई डरते भी थे। मगर पराक्रमी राजा नागादित्य ने उसी जंगल में शिकार खेलना चाहा और सदल-बल निकल पड़ा। मंत्री और सामंत राजाओं ने कई प्रकार से समझाया, लेकिन कोई फ़ायदा न रहा।

राजा नागादित्य ने भूतों के जंगल में प्रवेश कर देखा। वह देखने में भयंकर न था, बल्कि बहुत सुंदर लग रहा था। बड़ी शांति फैली हुई थी।" पेड़ों पर तरह-तरह के पक्षी मधुर स्वर में कलरव कर रहे थे। उस जंगल में होकर राजा आगे बढ़ा तो उसे एक सुंदर सरोवर दिखाई दिया। सरोवर का जल निर्मल था। उसमें हंस तैर रहे थे। राजा सदल-बल सरोवर के किनारे ठहर गया। थोड़ी देर आराम करके धनुष और बाण लेकर अकेले जंगल के बीच चला गया।

थोड़ी दूर चलने पर राजा को एक सफ़ेद खरगोश दिखाई पड़ा। राजा ने उस पर तीर चलाया। दूसरे ही क्षण खरगोश गायब हो गया और उसकी जगह एक अनुपम सुंदरी दिखाई दी। राजा ने

ए. सी. सर्कार, जादूगर

जो तीर चलाया, वह पुष्पमाला के रूप में बदलकर उसके कंठ में गिर गयी।

"महाराज, आप ने वरमाला डाल कर मुझे धन्य बनाया। आज से में आपकी पत्नी हूँ।" उस युवती ने कहा।

राजा नागादित्य उस युवती क सौंदर्य को देख पहले से ही मुग्ध था, अब उसकी मीठी बोली सुनकर होश खो बैठा। उस युवती को साथ लेकर सरोवर के पास पहुँचा और अपने मंत्रियों से बोला—"तुम लोग तुरंत राजधानी में जाकर मेरे विवाह का प्रबंध करो।"

राजा नागादित्य विवाह के बाद अपनी दूसरी पत्नी के प्रेम-जाल में फँस गया। वह अपनी पहली रानी और अपने पुत्र देवादित्य की बिलकुल परवाह न करता था। उनका प्रसंग आता तो राजा खीझ उठता था। राजा की दूसरी रानी का नाम सुरसुंदरी था। मगर वास्तव में वह भूतों के जंगल की पिशाचिनियों की रानी थी। उसने अपने मायाजाल से राजा को अपने हाथ का खिलौना बनाया।

एक-दो साल बाद सुरसुंदरी के भी एक पुत्र पैदा हुआ। उस दिन से वह देवादित्य से जलने लगी और मन में उसका अंत करने का निश्चय किया। उसने एक दिन राजा से कहा—"मेरी तबीयत दिन ब दिन बिगड़ती जा रही है। आप के बड़े पुत्र देवादित्य के उस राज्य से निकल जाने पर ही मेरी तबीयत सुधर सकती है।" अपनी छोटी रानी का सुख चाहनेवाले राजा ने उसी वक़्त देवादित्य को देश से बाहर जाने का आदेश दिया। यह बात सुन कर बड़ी रानी राजवती देवी ने राजा के चरणों पर गिर कर प्रार्थना की। लेकिन राजा ने उसे भी देश निकाला सज़ा दी और उन

दोनों को राज्य से बाहर भेजने का कार्य सेनापति रुद्रक को सौंप दिया।

सेनापति रुद्रक रानी राजवतीदेवी और राजकुमार देवादित्य के हाथों में हथकड़ियाँ डाल कर अपने साथ ले गया। लेकिन उन्हें राज्य से बाहर न भेज कर गुप्त रूप से अपने घर पर ही रखा और यह घोषणा की कि रानी और देवादित्य राज्य छोड़ कर कहीं चले गये हैं।

राजा के प्रधान मंत्री धर्मप्राण ने राजा की बुरी हालत देख यह निश्चय किया कि सुरसुंदरी का अंत करने पर ही राजा सुखी होगा। मंत्री ने अंतःपुर की दासी के ज़रिये सुरसुंदरी को विष खिलवाया, पर उसका कोई प्रभाव छोटी रानी पर न पड़ा। उसने उस ज़हर को हज़म कर लिया।

यह समाचार जानकर धर्मप्राण और भी घबरा गया। उसने अपने गुरु की सलाह लेनी चाही। उसका गुरु दूर के एक पहाड़ पर तपस्या कर रहा था। धर्मप्राण से सारी बातें जानकर गुरु ने सुरसुंदरी के प्राण लेने का उपाय बताया। वह यह था कि भूतों के जंगल में बारह डालोंवाला एक बरगद है। उसकी डालें जहाँ पर अलग हो जाती हैं, वहाँ

करना कोई मुश्किल की बात नहीं है।"
मंत्री ने सारी बातें सेनापति को सुनायीं।

"ऐसा वीर मिल सकता है। मगर मुझे थोड़ा समय जाहिये।" सेनापति ने कहा।

उसी रात को सेनापति ने अपने घर में गुप्तरूप से रहनेवाले देवादित्य को चांदी के सुये का समाचार बताया। देवादित्य रात के वक़्त भूतों के जंगल की ओर चल पड़ा। वहाँ पर उसे बारह डालोंवाला बरगद दिखाई पड़ा। उस खोखले में चांदी का सुआ भी हाथ लगा।

एक खोखला है। उस खोखले में चांदी का एक सूआ है। उस सुये से अगर कोई सुरसुंदरी के दायें पैर के अंगूठ पर चुभो दे तो वह मर जायगी।

मंत्री ने उपाय तो जान लिया, मगर भूतों के उस जंगल में जानेवाले वीर तो चाहिये। उसने सेनापति से यह युक्ति बतायी। सेनापति ने भी सुरसुंदरी की हत्या करने की इच्छा प्रकट की।

मंत्री ने सेनापति से पूछा–"हमारे राज्य में भूतों के जंगल में प्रवेश कर सकनेवाला कोई वीर हो तो बताओ। ऐसे वीर के मिलने पर सुरसुंदरी का वध

देवादित्य रात होने तक जंगल में बिताकर राजधानी को लौटा। मगर जब वह सेनापति के घर पहुँचनेवाला था, तब दुर्भाग्य से राजभटों ने उसे पहचान लिया। इस आशा से उसे सुरसुंदरी के पास ले गये कि देवादित्य को सौंपने पर उन्हें खूब पुरस्कार मिलेगा। उनकी आशा की पूर्ति हुई। जैसे उन लोगों ने सोचा था, उससे ज्यादा ही पुरस्कार मिले। सुरसुंदरी ने उस रात को देवादित्य को राजमहल में ही बन्दी बनाया और देश निकाला दण्ड का उल्लंघन करने के अपराध में उसे फाँसी का दण्ड दिलाने को राजा को मनवाया।

दूसरे दिन राजा ने देवादित्य को फाँसी की सजा सुनायी। दुपहर के बारह बजे देवादित्य को फाँसी देने का निर्णय हुआ।

मंत्री के सामने अब बड़ी समस्या पैदा हुई। उसने सेनापति से सलाह माँगी।

"तुम चिंता न करो। मेरे मित्र मायाधर ने मुझे एक उपाय बताया है। उसके ज़रिये हम इन कठिनाइयों से छूट सकते हैं।" सेनापति ने समझाया। इस पर मंत्री की हिम्मत बंध गयी।

पूर्व निश्चित योजना के अनुसार सेनापति ने सुरसुंदरी के पास जाकर कहा– "महारानीजी, मैं स्वयं देवादित्य को फाँसी पर चढ़ाने का कार्य संभालनेवाला हूँ। मेरा निवेदन है कि आप अपने दुश्मन की मौत खुद देखें।"

इस पर सुरसुंदरी ने मान लिया।

ठीक दुपहर के समय देवादित्य को फाँसी के तख्ते के पास लाया गया। सेनापति रुद्रक एक रस्सा ले आया। देवादित्य को दीवार से सटाकर खड़ा कर दिया। रुद्रक ने रस्से के मध्य भाग को देवादित्य के कंठ में गांठ लगा कर रस्से के दोनों छोरों को दो मज़बूत व्यक्तियों के हाथों में दे कहा–"जब मैं आदेश देता हूँ, तब तुम लोग रस्से को ज़ोर से खींचो।"

सुरसुंदरी अपने दुश्मन को फाँसी पर चढ़ते देखने के ख्याल से सामने आ खड़ी हुई।

"रस्सा खींचो।" सेनापति बोला।

दो मज़बूत व्यक्तियों ने रस्से के छोरों को ज़ोर से खींचा। फाँसी का फँदा देवादित्य के कंठ में कसने के बदले टूट गया। देवादित्य ने आगे गिरने का बहाना करके सुये से सुरसुंदरी के अंगूठे पर चुभो दिया। दूसरे ही क्षण चिल्ला कर उसने प्राण त्याग दिये। उसी क्षण अंतःपुर में उसका पुत्र भी मर गया। उन दोनों के मरते ही राजा को लगा कि उस का नशा उतर गया है। वह अपनी पहली रानी तथा देवादित्य के वास्ते विलाप करने लगा। जल्द ही पहली रानी और देवादित्य को मंत्री तथा सेनापति ने राजा के सामने हाज़िर किया। सब लोग सुखपूर्वक रहने लगे।

*   *   *

रस्सा खींचते ही फंदा के कसने के बदले कैसे छूट आया? ऐसा करने के लिए मायाधर ने कौन-सा उपाय किया? उसने सात सात फुट लंबे दो रस्से लिये। उन दोनों रस्सों को ज़मीन पर बिछा कर रस्से के रंगवाले पतले धागे से उन दोनों रस्सों को सी दिया। रस्से को देवादित्य के कंठ में लपेटते समय फंदे का ऐसा प्रबंध किया कि लिपट जावें। देवादित्य के कंठ के पीछे (नीचे का चित्र देखिये) इस फ़ंदे को जोड़कर धागे से सिया गया है। देवादित्य के पीछे दीवार है। इसीलिए धागे की सिलावट किसी को स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती। देवादित्य के कंठ के अगले हिस्से में फंदे की गांठ लगायी गयी है। रस्सों को खींचने पर धागा टूट गया। इसलिए फंदा कस न सका। नीचे के चित्र के आधार पर कोई भी यह जादू कर सकता है।
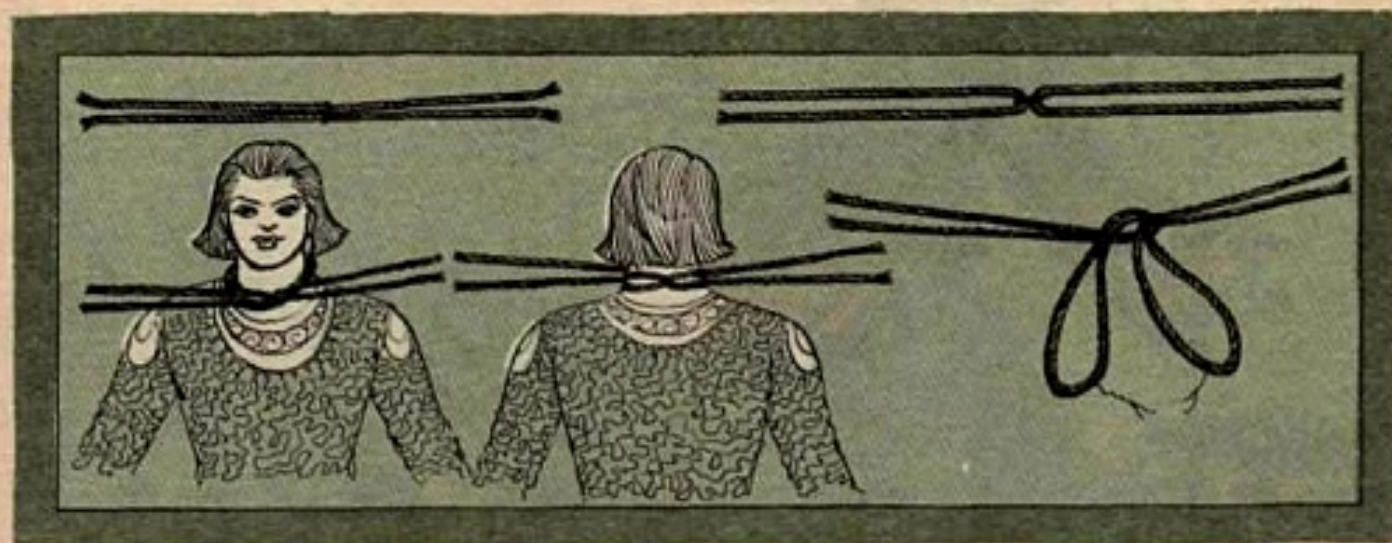
बाप का बेटा

एक गाँव में एक लुटेरा था। उसका नाम गर्जसिंह था। उसके शेरसिंह नामक दस साल का लड़का था। गर्जसिंह का विचार था कि उसका बेटा भी चोरी करने में उसी की भांति निपुण बन कर ज़िंदगी काटे। लेकिन वह बीमार पड़ा और इसी चिंता में घुलने लगा कि उसके बाद उसके बेटे का क्या होगा?

एक दिन गर्जसिंह ने शेरसिंह को बुला कर कहा–"बेटा, तुम अभी बच्चे हो। मैं अपने पेशे के कई रहस्यों को तुमको सिखाना चाहता था। तुम्हारे सीखने की उम्र न आयी और न मुझे सिखाने का मौक़ा ही मिला। इस बीमारी से शायद मेरी मौत हो जाय। अगर मैं मर जाऊँगा तो तुम कैसे जी सकोगे? यह सोचने पर कलेजा फटा-सा जाता है।"

"पिताजी, चिंता न करो। तुम्हारे पुत्र बन कर क्या मैं तुम्हारी इज्जत बचा नहीं सकता? मैं भी यह साबित करूँगा कि बाप से कम क़ाबिल चोर नहीं हूँ।" शेरसिंह ने समझाया।

अपने बेटे की बातें सुनने पर गर्जसिंह की चिंता दूर नहीं हुई, और बढ़ गयी।

दिन बीतते गये। एक दिन दुपहर के समय शेरसिंह गाँव के बाहर एक कुएँ के पास जा बैठा। गाँव की स्त्रियाँ पानी भर कर कपड़े धोकर चली गयीं। अब कुएँ के पास एक भी आदमी न था। शाम तक कोई उस कुएँ के पास भी न जाता।

उस वक़्त शेरसिंह ने दूर पर एक मुसाफ़िर को देखा। वह देखने में लंबा और हट्टा-कट्टा था। सर पर पगड़ी बांधे हुए था। उसके कंधे पर दो-तीन गठरियाँ भी थीं। उस आदमी को देखते ही शेरसिंह ने

राधेश्याम भुवालका

भांप लिया कि वह नामी चोर होगा। उसने यह भी समझ लिया कि उस चोर ने पिछली रात को कहीं चोरी की और माल को बेचने किसी गाँव में जा रहा है।

शेरसिंह को एक उपाय सूझ पड़ा। वह रोते हुए कुएँ में झांकने लगा। चोर ने देखा कि उस लड़के के कानों में सोने के कुण्डल हैं। आस-पास में कोई नज़र नहीं आ रहा है। कुण्डलों को चुराने का अच्छा मौक़ा समझ कर वह कुएँ के पास आया।

उस वक़्त चोर ने देखा कि लड़का रो रहा था। चोर ने पूछा—

"अरे लड़के! रोते क्यों हो?"

शेरसिंह और ज़ोर से रोते हुए कुएँ में झांकते बोला—"मेरे गले में सोने की माला थी। झांक कर देखता रहा, माला कुएँ में गिर गयी। मैं कुएँ में उतर नहीं सकता। माला लिये बिना घर जाऊँगा तो मेरा बाप पीटेगा।" लड़का रोने लगा।

"रोओ मत! यह मिठाई खा लो। मैं तुम्हारी माला निकालवाये देता हूँ। ज़रा ये गठरियाँ तो देखते रहो।" यह कह कर चोर ने एक गठरी से मिठाई निकाल कर लड़के के हाथ में दी। गठरियों को जगत पर रख कर वह कुएँ में उतर पड़ा।

शेरसिंह तुरंत उन गठरियों को उठा कर घर की ओर दौड़ पड़ा।

लड़के के हाथों में गठरियाँ देख गजसिंह ने पूछा—"बेटे, ये गठरियाँ कैसी हैं?"

शेरसिंह ने अपने बाप को सारी कहानी सुनायी। बाप-बेटे ने गठरियाँ खोल कर देखा। उनमें सोने व चांदी के गहने और क़ीमती वस्त्र थे। उन्हें देखने पर लगा कि वह ज़रूर चोरी का ही माल है।

गजसिंह ने आनंद में आकर कहा— "बेटे, तुम इस छोटी-सी उम्र में ही मुझसे प्रवीण बन गये हो। अब तुमको मुझे कुछ सिखाने की ज़रूरत नहीं है।"

द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुनकर कई देशों के राजा कांपिल्य नगर में आये। उन्हें अलग-अलग स्थानों में ठहरने का प्रबंध किया गया। पांडव कुंती के साथ एक कुम्हार के घर ठहरे। अपना परिचय दिये बिना वे लोग मधुकरी करके दिन काटने लगे।

राजा द्रुपद ने भी अपना यह विचार किसी पर प्रकट न किया कि वह अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन के साथ ही करेगा। इसलिए उसने एक ऐसे असाधारण धनुष का प्रबंध किया जिसे तोड़ना महान धनुर्धारियों के लिए संभव न था। उसने ऊपर एक मत्स्य यंत्र को बिठाया और यह ढिंढोरा पिटवाया कि जो वीर उस धनुष से उस यंत्र को भेध डालेगा, उसके साथ वह अपनी पुत्री का विवाह करेगा।

यह ढिंढोरा सुनकर कर्ण, धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव तथा अनेक अन्य राजा, और ऋषि भी स्वयंवर देखकर प्रसन्न होने के ख्याल से कांपिल्य नगर में आये। वहाँ पर द्रुपद का स्वागत पाकर उसका अतिथ्य स्वीकार करने लगे। कांपिल्य नगर की शोभा वर्णन के बाहर थी।

नगर की ईशान दिशा में स्वयंवर का मण्डप बनाकर उसे खूब अलंकृत किया गया। उसमें सबके बैठने के उपयुक्त आसन लगाये गये। क्षत्रिय तथा ब्राह्मण आकर समय पर यथोचित स्थानों पर बैठ गये। ब्राह्मणों के बीच बैठे हुए पांडव

उस समय धृष्टद्युम्न ने मण्डप के बीच प्रवेश कर वाद्यों को बंद करने का आदेश दिया। चारों तरफ़ बैठे हुए राजाओं को धनुष, पाँच बाण तथा ऊपर बिठाये गये मत्स्य यंत्र को दिखाकर कहा–"इन पांचों बाणों को धनुष पर चढ़ाकर आप लोगों में से जो वीर इस मत्स्य यंत्र को भेध डालेंगे, उनके साथ मेरी बहन विवाह करेंगी। इसलिए आप में जो धनुर्विद्या के प्रवीण हैं, वे यथाशक्ति प्रयत्न कर सकते हैं।" इसके बाद उसने सभी राजाओं का द्रौपदी को परिचय कराया। उनमें दुर्योधन आदि के साथ शल्य, विराट, शकुनि, अश्वत्थामा, अक्रूर, सांबु, प्रद्युम्न, कृष्ण, कृतवर्मा, अनिरुद्ध, सुशर्मा, शिशुपाल, चित्रांगद, भगदत्त, पौंड्रक वासुदेव इत्यादि अनेक लोग थे।

राजा द्रुपद के वैभव को देख बहुत ही प्रभावित हुए। अतिथियों का समय कई दिन तक नृत्य, गान इत्यादि विनोदों के साथ कट गया।

आखिरी दिन द्रौपदी ने मंगल स्नान करके अच्छे वस्त्र पहने। अपने हाथों में स्वर्ण-पुष्पों की माला लिये स्वयंवर-मण्डप के बीच आ पहुँची। राजा द्रुपद के पुरोहित सोमक ने अग्नि-कुण्ड के चारों तरफ़ दाभ बिछाकर अग्निहोत्र किया और द्रौपदी को आशीर्वाद दिया। द्रौपदी के पहुँचते ही एक साथ अनेक मंगल वाद्य बज उठे। उपस्थित लोगों ने जयगान किये।

मन्मथ के छठवें बाण की भांति लगनेवाली द्रौपदी की ओर उपस्थित लोग निर्निमेष देखते ही रह गये। कृष्ण ने ब्राह्मणों के बीच बैठे हुए पांडवों को पहचाना और यह समाचार बलराम को भी दिया।

मत्स्य यंत्र को भेधने का कार्य शुरू हुआ। एक एक करके अनेक राजकुमार आये, परंतु धनुष को न भेधने की हालत में

अपमानित होकर हट गये। कई लोगों के असफल होने के बाद कर्ण आगे आया। उसने धनुष उठाकर बाण का संधान किया। उस वक़्त सबने सोचा कि वही अवश्य द्रौपदी को जीत लेगा। भाटों ने कर्ण की प्रशंसा की। इस पर द्रौपदी ने उच्च स्वर में कहा—"मैं सूतपुत्र का वरण नहीं कर सकती।" कर्ण क्रोध के साथ हँसते हुए सूर्य की ओर देख हट गया। कर्ण के बाद शिशुपाल, जरासंध, शल्य आदि मत्स्य यंत्र को भेधने में असफल हो अपने अपने आसनों की ओर लौट गये। यधुवृष्णि, भोज, अंधक इत्यादि राजकुमारों को मत्स्य यंत्र के भेधने से कृष्ण ने रोक दिया।

इसके उपरांत एक भी राजा आगे नहीं आया। प्रेक्षकों में कोलाहल मच गया। उस वक़्त ब्राह्मणों के बीच से अर्जुन उठ चला आया और धनुष के पास पहुँचा। इस पर सभी ब्राह्मण चकित हो परस्पर वार्तालाप करने लगे—"महान पराक्रमी शल्य, जरासंध, शिशुपाल आदि जिस यंत्र को भेध न पाये, उसे क्या यह ब्राह्मण कुमार भेध सकेगा? यह निश्चय ही ब्राह्मणों का अपमान कर बैठेगा।" कुछ लोगों ने कहा—"यह शक्तिशाली होगा, वरना उस यंत्र को भेधने क्यों आयगा?"

अर्जुन ने धनुष के निकट पहुँच कर सारी सभा को नमस्कार किया। तदनंतर धनुष को भी प्रणाम किया। अपने गुरूजी के प्रति मन ही मन प्रणाम किया। इसके बाद श्री कृष्ण का स्मरण किया। तब उस धनुष को इस प्रकार उठाया, जैसे वह रोज़ अपने धनुष को बड़ी आसानी से उठाता है। उस पर पाँच बाण चढ़ाये और एक ही वार से मत्स्य यंत्र को नीचे गिराया। सारी सभा चकित रह गयी। हर्षनादों से आकाश गूँज उठा। ब्राह्मण मारे प्रसन्नता के

उछलने लगे। उसी वक़्त युधिष्ठिर नकुल और सहदेव को साथ ले अपने बसेरे की ओर चल पड़े। मगर द्रुपद दूर पर खड़े संभ्रम एवं आश्चर्य के साथ अर्जुन को देखता ही रह गया।

स्वयंवर में आये हुये राजाओं ने ऐसा अनुभव किया कि उनका अपमान हुआ है। वे कहने लगे—"इस द्रुपद ने हमें पेड़ पर चढ़ा कर फल तोड़ने के पहले नीचे गिरा दिया। वह अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार के साथ न कर एक ब्राह्मण के साथ करेगा? ब्राह्मणों में कहीं स्वयंवर भी होता है? यह राजकुमारी ब्राह्मण के साथ विवाह कैसे करेगी? ऐसा काम फिर से न हो, इसके लिए हमें द्रुपद का अंत करना होगा। यदि राजकुमारी किसी दूसरे राजकुमार के साथ विवाह करे तो ठीक है, वरना इसे आग में जला डालेंगे। मत्स्य यंत्र को भेधने वाला ब्राह्मण है, इसलिए इसे जान के साथ छोड़ रहे हैं।" ये शब्द कहते सभी राजा तलवार और भाले लेकर द्रुपद के चारों ओर फैल गये। द्रुपद डर कर ब्राह्मणों के बीच भाग गया।

द्रुपद पर हमला करने वाले राजाओं का भीम और अर्जुन ने सामना किया।

राजाओं ने बाणों की वर्षा की, भीम ने एक पेड़ उखाड़ कर बाणों को रोक दिया और अर्जुन की बगल में आकर खड़ा हो गया। ब्राह्मणों ने राजा द्रुपद की रक्षा करने के लिए राजाओं पर पत्थर फेंकना शुरू किया। अर्जुन ने उनको रोक कर उसी धनुष से राजाओं पर बाण छोड़े। शल्य और कर्ण ने इस दृश्य को देख यह निश्चय किया कि उनका सामना करनेवाले भले ही ब्राह्मण क्यों न हो, उसे मार डालना चाहिये। अर्जुन कर्ण के साथ युद्ध करने लगा। अर्जुन के पराक्रम पर आश्चर्य चकित हो कर्ण बोला—"हे ब्राह्मण! मैं

लेकिन इस घटना से एक बात स्पष्ट हो गयी कि ये लोग साधारण ब्राह्मण नहीं हैं। उनका परिचय पाने की जिज्ञासा भी लोगों में बढ़ गयी। कृष्ण ने राजाओं से कहा—"इन ब्राह्मणों ने न्यायपूर्वक द्रौपदी को जीत लिया है। राजाओं से धर्म-युद्ध भी किया है। इसलिए उनसे युद्ध करना उचित न होगा।" कृष्ण की सलाह मानकर सभी राजा वहाँ से चल दिये।

इस बीच में कुम्हार के घर ठहरी कुंतीदेवी अपने पुत्रों के लौटते न देख डर गयीं कि कहीं दुर्योधन आदि के जरिये पांडवों का अनिष्ट तो नहीं हुआ है। इतने में युधिष्ठिर नकुल और सहदेव को साथ लेकर वहाँ जा पहुँचे। इसके थोड़ी देर बाद भीम और अर्जुन भी द्रौपदी को साथ लेकर आ पहुँचे। आते ही अपनी माता से बोले—"माँ, हम भिक्षा लाये हैं।" कुंतीदेवी घर के अन्दर थीं। वह यह कहते बाहर आयीं, "बेटे, सब बराबर बांट लो।" बाहर आकर देखती क्या हैं, द्रौपदी वहाँ पर खड़ी है। उसकी शोभा देख कुंती आवाक् रह गयीं।

इसके बाद कुंती ने युधिष्ठिर से कहा—"बेटे, मुझसे बड़ी ग़लती हो गयी है।

तुम्हारी अस्त्र-विद्या पर मुग्ध हूं। मेरे बराबर युद्ध कर सकने वाला अर्जुन को छोड़ दूसरा कोई नहीं है। तुम सच बताओ कि तुम कौन हो?" लेकिन अर्जुन ने अपना असली परिचय नहीं दिया। उसके तेज को देख कर्ण ने स्वयं युद्ध बंद किया।

इस बीच एक ओर शल्य तथा भीम के बीच युद्ध हो रहा था। अंत में भीम ने शल्य को बचाने के ख्याल से उसे ऊपर उठा कर दूर फेंक दिया। सभी ब्राह्मण एक साथ हंस पड़े। बाक़ी राजकुमार मुँह बाये देखते रह गये।

भीम और अर्जुन ने मुझसे कहा कि भिक्षा लाये हैं, इसलिए मैंने सब को बराबर बांटने को कहा। मैंने आज तक कभी असत्य भाषण नहीं किया। इस कन्या का तुम सब अनुभव करोगे तो वह अधर्म होगा। नहीं तो मेरी बात झूठी साबित होगी। इसलिए तुम लोग सोच-समझ कर वही करो, जो न्यायोचित है।"

युधिष्ठिर थोड़ी देर तक सोचता रहा, तब अपनी माँ को सांत्वना देकर अर्जुन से बोला—"अर्जुन, तुम अग्नि को साक्षी बना कर इस कन्या के साथ विहाह करो।"

इस पर अर्जुन ने कहा—"यह कैसे संभव होगा? मेरे बड़े भाई आप और भीम को अविवाहित रहते मैं कैसे विवाह कर सकता हूँ?"

लेकिन उस वक्त पांचों पांडवों के मन में द्रौपदी के साथ विवाह करने की इच्छा पैदा हुई। अपनी माँ और अर्जुन की बातें सुनने के बाद युधिष्ठिर ने कहा—"तो हम सब इस कन्या के साथ विवाह करेंगे।" यह बात सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

इस बीच में कृष्ण बलराम को साथ ले पांडवों की खोज करते वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने युधिष्ठिर और कुंतीदेवी को प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा—"हे कृष्ण! हम लोग ब्राह्मणों का वेष धर कर अज्ञात जीवन बिता रहे हैं। आपने हम को कैसे पहचाना? यहाँ पर आये कैसे?"

कृष्ण ने हँस कर कहा—"राजन्, परक्रम को कैसे छिपा सकते हो? आज के स्वयंवर में आप लोगों ने जो पराक्रम प्रदर्शित किया, वह पांडवों को छोड़ अन्य लोगों के लिए संभव नहीं है। दुष्ट दुर्योधन की चाल न चल सकी, यह तो बड़ा अच्छा हुआ। आप लोगों को सब की आँख बचा कर रहना ही उचित है।" ये बातें कहकर

कृष्ण पांडवों से विदा ले बलराम के साथ वापस चले गये ।

इस बीच में धृष्टद्युम्न ने एक काम किया । उसे बिलकुल यह मालूम न था कि मत्स्य यंत्र को भेध कर द्रौपदी को जीतने वाला ब्राह्मण कौन है । वह कहाँ पर ठहरा हुआ है? द्रौपदी को साथ ले कहाँ चला गया है ? इसलिए धृष्टद्युम्न अन्य ब्राह्मणों के साथ गुप्त रूप से निकल पड़ा और अर्जुन के साथ कुम्हार के घर पहुँच कर एक जगह छिप गया ।

कृष्ण और बलराम के जाने पर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों मधुकरी ले आये । कुंती ने उसमें थोड़ा अंश अतिथियों को रख कर शेष अंश के दो भाग किये, एक भाग भीम को और दूसरे भाग को बाक़ी चारों को खिलाने का द्रोपदी को आदेश दिया । द्रौपदी ने वैसा ही किया । भोजन के बाद घास बिछा कर उस पर हिरणों के चर्म बिछाये गये । तब सब लेट गये । द्रौपदी पांडवों के चरणों के पास लेट गयी ।

पांडव युद्ध के व्यूहों को भेधने व विभिन्न प्रकार के अस्त्रों के प्रयोगों के संबंध में चर्चा करने लगे । आड़ में से ये सारी बातें धृष्टद्युम्न ने सुनीं और उसने निश्चय कर लिया कि ये ब्राह्मण वेषधारी निश्चय ही क्षत्रिय हैं । तब लौट कर अपने पिता को यह समाचार दिया ।

"हमारी कृष्णा को दो ही व्यक्ति साथ लेकर गये, मगर उनके डेरे पर तीन और व्यक्ति हैं । उनकी माता भी साथ में हैं । इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है कि वे उत्तम वंशी क्षत्रिय हैं । मेरा संदेह है कि पांडव ही होंगे ।" धृष्टद्युम्न ने द्रुपद से कहा ।

द्रुपद अपनी इच्छा की पूर्ति होने पर बहुत प्रसन्न हुआ । उनके बारे में पूरे विवरण जानने के लिए अपने पुरोहित को कुम्हार के घर भेजा ।

व्लादीमिर ईल्यिच उल्यानव (लेनिन) का जन्म २२ अप्रैल १८७० में हुआ। उन्होंने सीम्बिर्स्क नामक नगर में जन्म लिया जो ओल्गा नदी के किनारे है। पर बाद को लेनिन के नाम पर उस नगर का नाम उल्यानव्स्क रखा गया।

लेनिन के पिता का नाम ईल्या निकलायेविच था। उनका परिवार मामूली था। ईल्या निकलायेविच अपने बड़े भाई की मदद से पढ़-लिख कर अध्यापक बना। विद्यार्थियों में वह बड़ा लोकप्रिय था। क्यों कि वह कभी विद्यार्थियों को दण्ड नहीं देता था और न प्रधानाध्यापक से उन की शिकायत ही करता था। वह बड़ी नम्रता के साथ विद्यार्थियों को इस तरह पढ़ाता कि बच्चे आसानी से समझ लेते। पढ़ाई में जो विद्यार्थी पिछड़े रह जाते, उनको वह घर पर मुफ़्त पढ़ाया करता था। गरीब तथा किसानों के बच्चों के लिए सीम्बिर्स्क में ज्यादा से ज्यादा पाठशालाएँ खोलने का उसने बड़ा प्रयत्न किया।

लेनिन की माँ का नाम मरीय अलेग्जांड्रूवे था। उसका पिता एक डाक्टर था। उसका अधिकांश जीवन देहातों में ही बीता। किसान उसे बहुत चाहते थे। सामाजिक मनोरंजन वह बिलकुल पसंद नहीं करती थी। वह घर से बाहर कभी नहीं जाती थी। उसका सारा समय बच्चों की परवरिश में बीत जाता था। बच्चे उसे बहुत प्रेम करते थे और उसका आदर भी करते थे।

लेनिन को बचपन में अपनी माता का पूरा प्यार मिला। वह अपने माता-पिता की तीसरी संतान था। उसकी एक बहन थी जिसका नाम ओल्या था।

ए. उल्यानव

लेनिन का पिता

वह लेनिन से डेढ़ साल छोटी थी। उनके खेलों से सारा घर गूंज उठता था।

लेनिन जब पाँच साल का हुआ तब उसकी माँ खुद उसे पढ़ाने लगी। लेनिन का पिता बालोपयोगी किताबें और पत्रिकाएँ मंगाया करता था। लेनिन और ओल्या घंटों उन पुस्तकों और पत्रिकाओं को पढ़ा करते थे। धीरे-धीरे उन दोनों ने रूस के इतिहास पढ़ने और कविताएँ कंठस्थ करना प्रारंभ किया। थोड़ी देर पढ़ने के बाद दोनों खेलने चले जाते। गरमी के दिनों में दौड़ने और पेड़ों पर चढ़ने में मजा लेते थे। जाड़े के दिनों में जब खूब बर्फ़ गिरती, तब बर्फ़ पर फ़िसलने, बर्फ़ के टुकड़ों को फेंकनेवाले खेल खेलते। थोड़ा बड़े होने पर लेनिन स्केटिंग खेलने जाने लगा था।

लेनिन बचपन में बड़ा नटखट था। मगर उसका एक अच्छा गुण था। वह कभी झूठ बोलता न था। कभी कोई गलती कर बैठता तो वह झट उसे मान लेता था। पाँच साल की उम्र में लेनिन ने अपनी बड़ी बहन की रूलर तोड़ दी और उसे ले जाकर अपनी बहन को दिखाया। उसे सच्ची बात बता दी।

"रूलर कैसे टूट गयी?" लेनिन की बहन ने पूछा।

"ऐसे घुटनों पर रख कर तोड़ दी।" यह कहते उसने अभिनय करके दिखाया।

"लेनिन गलती को नहीं छिपाता। यह उसका अच्छा गुण है।" लेनिन की माँ सदा यही कहा करती थी।

लेनिन की आठ साल की उम्र में एक घटना घटी। एक बार लेनिन अपने भाई-बहनों के साथ कज़ान में स्थित अपने रिश्तेदारों के घर गया था। वहाँ

पर खेलते-खेलते भूल से उसने एक मेज ढकेल दी। जिससे मेज पर रखी पानी की सुराही नीचे गिर कर टूट गयी।

घर के लोगों ने पूछा–"यह किसकी करतूत है?" सबने कहा–"हमने नहीं गिराया।" लेनिन ने भी कहा–"मैं ने भी नहीं गिराया।"

दो-तीन महीने बाद वे लोग सीम्बिर्स्क लौट आये। लेनिन की माँ सभी बच्चों को सुला रही थी। तब लेनिन अपनी माँ की ओर देखते जोर से रो पड़ा।

"माँ, मैं ने झूठ कह दिया है। मैं ने कहा था कि पानी की सुराही को मैं ने नहीं गिराया। लेकिन वास्तव में मैं ने ही गिराया था।" ये शब्द कहते लेनिन रो पड़ा।

साढ़े नौ साल की उम्र में लेनिन पढ़ने के लिए पाठशाला में गया। विद्यार्थी के रूप में वह बड़ा होशियार था। हमारे पिता ने हम सब को पढ़ने व हर काम लगन के साथ करने की शिक्षा दी। लेनिन के अध्यापक कहा करते थे कि वह वर्ग में ध्यान से पाठ सुनता है, इसलिए वह पढ़ाई में सफल निकलेगा। वह घर का काम और

लेनिन की माँ

बच्चों से पहले ही पूरा कर देता। पढ़ने के बाद बाक़ी समय बात-चीत करने, खेलने व बच्चों को चिढ़ाने में बिताया करता था।

लेनिन का पिता किसी दिन घर पर रहता हो वह लेनिन को अपने कमरे में ले जाता। इस तरह बाक़ी बच्चों को उसके नटखटपन से बचाता। उसकी पढ़ाई की जाँच करता, लेकिन उस में गल्तियाँ बिलकुल न निकलती थीं। तब वह लेनिन को कोई न कोई काम सौंप देता, या दोनों बैठ कर शतरंज खेलते।

अपने पिता की गैर हाज़िरी में लेनिन एक दम ऊधम मचा देता।

लेनिन का पिता शतरंज का शौकीन था। यही सनक उसके बच्चों पर भी सवार हो गयी।

लेनिन जो भी काम करता, बड़ी लगन से किया करता था। उसने क़िताबों की मदद से शतरंज का खेल सीखा और उस में प्रवीण बना। किसी गाँव में या यात्रा में होता तो उसका समय शतरंज में ही बीत जाता। विद्यार्थी-दशा में लेनिन अपने बड़े भाई साष के साथ शतरंज की चाल चलने को ललचा उठता था। साष जो काम करता, वही लेनिन भी करता। यहाँ तक की छोटी-सी बातों में भी लेनिन अपने बड़े भाई का अनुकरण किया करता था। साष का स्वभाव गंभीर था। वह चिंतनशील तथा कर्तव्य के प्रति निष्ठावान था। इन गुणों का प्रभाव लेनिन पर भी पड़ा। लेनिन ने अपने बड़े भाई से लगन, ईमानदारी, कर्तव्य और कठिन परिश्रम इत्यादि गुण सीखें।

लेनिन अपने बड़े भाई साष से बहुत प्रेम करता था। कार्य में ही नहीं बल्कि लोगों के साथ व्यवहार करने में भी साष हम सबका मार्गदर्शक था। उसकी कुशलता, कोमल स्वभाव, न्यायशीलता और लगन ने हम सबको बहुत ही आकर्षित किया। व्लदीमिर (लेनिन) बड़ा क्रोधी स्वभाव का था। मगर साष की गंभीरता, आत्म संयम आदि ने हम सब को खास कर व्लदीमिर को बदल डाला। अपने भाई के अनुकरण में उसने लगन के साथ अपनी कमज़ोरी पर विजय पायी। बड़े होने पर हमने लेनिन में कभी क्रोध न देखा। (और है)

लेनिन का जन्मस्थान

संसार के आश्चर्य:

१०१. जोन आफ़ आर्क का चिन्ह

फ्रांस की स्वतंत्रता का चिह्न जोन आफ़ आर्क है। इसको "आर्लियन्ज कन्या" पुकारते हैं।

पाँच शताब्दियों के पूर्व जहाँ पर इस कन्या का प्राणों के साथ दहन किया गया था, उसी जगह-रूआ नगर में—उसका स्मारक चिह्न बनाया गया है। मई ८ फ्रांस की स्वतंत्रता का दिन है। वही जोन आफ़ आर्क का भी दिन है। यह आश्चर्य की बात है कि पिछले युद्ध में ८ मई १९४३ को ट्यूनिस नगर भी शत्रुओं के हाथों से मुक्त हुआ है।